वा०—विभाजयितुर्णिलोपश्च ।।४६०।।

विभाजयितृ शब्द से अञ् प्रत्यय और उस प्रत्यय के परे णिच् का लोप भी होवे। जैसे—विभाजयितुर्धर्म्यं वैभाजित्रम् ।। ४९० ।।

अवक्रयः ।।४९१।। —अ० । ४ । ४ । ५० ।।

अवक्रय अर्थात् खरीदने और बेचने अर्थ में षष्ठी समर्थ प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होवे । जैसे—गोशालाया अवक्रयो गौशालिकः; आकरिकः; आपणिकः; हाटकिकः इत्यादि ।।४९१।।

तदस्य पण्यम् ।।४६२।। —अ० ४ । ४ । ५१ ।।

पण्यसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—सुवर्णं पण्यमस्य सौवर्णिकः; अपूपाः पण्यमस्य आपूपिकः; शाष्कुलिकः; ओषधयः पण्यमस्य औषधिकः; मुक्ताः पण्यमस्य मौक्तिकः इत्यादि ।। ४९२ ।।

शिल्पम् ।।४६३।। —अ० ४ । ४ । ५५ ।।

शिल्प शब्द क्रिया की कुशलता अर्थ में वर्त्तमान है । शिल्पसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—मृदङ्गवादनं शिल्पमस्य मार्दङ्गिकः[1]; पाणविकः, वीणावादनं शिल्पमस्य वैणिकः इत्यादि ।। ४९३ ।।

---

१. यहां वाक्य में महाभाष्यकार ने उत्तरपद का लोप इसलिये माना है कि मार्दङ्गिक शब्द से मृदङ्ग बजाने वाले का ही ग्रहण होवे। और मृदङ्ग रचने वाला कुम्हार तथा चाम आदि से मढ़ने वाले की भी कारीगरी उसमें होती है, परन्तु लोक में मार्दङ्गिक शब्द से उसका बजाने वाला ही लिया जाता है। और ऐसा ही वाक्यार्थ सब प्रयोगों में जानो ।।

प्रहरणम् ।।४६४।। —अ० । ४ । ४ । ५७ ।।

प्रहरण समानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से षष्ठी के अर्थ में ठक् प्रत्यय हो । जैसे—आग्नेयास्त्रं प्रहरणमस्य आग्नेयास्त्रिकः; शतघ्नी प्रहरणमस्य शातघ्निकः; भौशुण्डिकः; असिः प्रहरणमस्य आसिकः; चाक्रिकः; धानुष्कः; दाण्डिकः इत्यादि ।। ४९४ ।।

शक्तियष्ट्योरीकक् ॥ ४६५ ॥ —अ० ४ । ४ । ५९ ।।

प्रहरण समानाधिकरण प्रथमासमर्थ शक्ति और यष्टि प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में ईकक् प्रत्यय होवे । जैसे—शक्तिः प्रहरणमस्य शाक्तीकः; याष्टीकः ।। ४९५ ।।

अस्तिनास्तिदिष्टं मतिः ॥ ४६६ ॥

—अ० ४ । ४ । ६० ।।

अस्ति नास्ति और दिष्ट इन मति समानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में ठक् प्रत्यय होवे । जैसे—अस्तीति मतिरस्य स आस्तिकः[1]; नास्तीति मतिरस्य स नास्तिकः; दिष्टमिति मतिरस्य स दैष्टिकः ।। ४९६ ।।

---

१. यहां वाक्यार्थ में इति शब्द से उत्तरपद का लोप समझना चाहिये । क्योंकि ईश्वर, जीव, पुनर्जन्म और शुभाशुभ कर्मों का फल आदि है, ऐसी बुद्धि जिस पुरुष की हो वह आस्तिक, और इसके विरुद्ध नास्तिक समझा जावे । और जो इति शब्द का लोप न समझे तो जिस चोर आदि में अधिक बुद्धि हो वह भी आस्तिक और बुद्धि से रहित जड़ पदार्थ भी नास्तिक कहावें ।।

शीलम् ।। ४९७ ।। —अ० ४ । ४ । ६१ ।।

शील समानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से षष्ठी के अर्थ में ठक् प्रत्यय हो । जैसे—अपूपा भक्षणं शीलमस्य स आपूपिकः; शाष्कुलिकः[1]; दौग्धिकः; मौदकिकः; औदनिकः; साक्तुकः इत्यादि ।। ४९७ ।।

छत्रादिभ्यो णः ।। ४९८ ।। —अ० ४ । ४ । ६२ ।।

शील समानाधिकरण प्रथमासमर्थ छत्र आदि गणपठित प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में ण प्रत्यय होवे । ठक् प्राप्त है उसका बाधक है । छत्र शब्द मुख्य करके छाता का नाम है ।। ४९८ ।।

भा०—किं यस्य छत्रधारणं शीलं स छात्रः ? किञ्चातः? राजपुरुषे प्राप्नोति । एवं तर्ह्युत्तरपदलोपोऽत्र द्रष्टव्यः । छत्रमिवच्छत्रम्, गुरुश्छत्रम्, गुरुणा शिष्यश्छत्रवच्छाद्यः । शिष्येण गुरुश्छत्रवत्परिपाल्यः ।। ४९९ ।।

लोक में परम्परा से छात्र शब्द विद्यार्थी का वाची है । इसलिये महाभाष्यकार ने इस विषय का स्पष्ट व्याख्यान कर दिया कि—छत्र शब्द से यहां गुरु उपमेय है । अर्थात् शिष्य के अज्ञानरूपी अन्धकार को गुरु निवारण करता है, इसलिये छत्र है । जैसे घाम आदि से अपनी रक्षा करनेहारे छाता को यत्न से

---

१. यहां भी भक्षण उत्तरपद का लोप समझना चाहिये । क्योंकि पूड़ी आदि बनाने वालों के नाम शाष्कुलिक आदि न हो जावें । लोक में इन पदार्थों के खाने वाले ही इन नामों से समझे जाते हैं ।।

रखते हैं, वैसे ही अपने सेवन से गुरु की रक्षा करनेवाला पुरुष छात्र कहाता है। और जैसे छाता घाम आदि से होनेवाले दुःखों का निवारण करता है, वैसे ही गुरु भी मूर्खता आदि से होनेवाले दुःखों को नष्ट करता है। [जैसे—] छत्रं गुरुस्तत्सेवनशीलमस्य स छात्रः, कन्या चेच्छात्रा; बुभुक्षा शीलमस्य स बौभुक्षः इत्यादि।

इस सूत्र पर जयादित्य भट्टोजिदीक्षितादि कहते हैं कि—गुरु के जो दुष्ट कर्म्म हैं, उनके आच्छादन करने का स्वभाव वाला शिष्य छात्र कहाता है। इस व्याख्यान को बुद्धिमान् वैयाकरण विचारें कि महाभाष्य से कितना विरोध आता है। इस सूत्र के व्याख्यान से ऐसा अनुमान होता है कि जयादित्य भट्टोजिदीक्षितादि लोग महापातकी होंगे ॥ ४९९ ॥

हितं भक्षाः ॥ ५०० ॥ —अ० ४। ४। ६५ ॥

यहां भक्ष शब्द में बहुवचननिर्देश से भक्षवाचियों का ग्रहण होता है। हित शब्द के योग में चतुर्थी विभक्ति होती, और पूर्व से यहां षष्ठ्यर्थ की अनुवृत्ति आती है, इसलिये उस षष्ठी का विपरिणाम चतुर्थी समझनी चाहिये।

हित समानाधिकरण प्रथमासमर्थ भक्ष्यवाची प्रातिपदिकों से चतुर्थी के अर्थ में ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—ओदना हितमस्मै औदनिकः; अपूपा हितमस्मै आपूपिकः; शाष्कुलिकः; मौदकिकः इत्यादि ॥ ५०० ॥

तदस्मै दीयते नियुक्तम् ॥ ५०१ ॥

—अ० ४। ४। ६६ ॥

निरन्तर देने अर्थ में प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—अग्रासनमस्मै दीयते आग्रासनिकः; आग्रभोजनिकः; अपूपा अस्मै दीयन्त इत्यापूपिकः; मौदकिकः इत्यादि ॥ ५०१ ॥

तत्र नियुक्तः ॥ ५०२ ॥ —अ० ४ । ४ । ६९ ॥

नियत करने अर्थ में सप्तमीसमर्थ प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय हो। जैसे—पाकशालायां नियुक्तः पाकशालिकः; शौल्कशालिकः; हाटकिकः; आपणिकः; धर्मोपदेशे नियुक्तो धार्मोपदेशिकः; वैद्याध्ययनिकः; यन्त्रालये नियुक्तो यान्त्रालयिकः इत्यादि ॥५०२॥

अगारान्ताट्ठन् ॥ ५०३ ॥ —अ० ४ । ४ । ७० ॥

यहां पूर्वसूत्र से ठक् प्रत्यय प्राप्त है, उसका यह अपवाद है।

नियत करने अर्थ में सप्तमीसमर्थ अगारान्त प्रातिपदिक से ठन् प्रत्यय हो। जैसे—धनागारे नियुक्तो धनागारिकः; शस्त्रागारिकः; अश्वागारिकः; पुस्तकागारिकः इत्यादि ॥ ५०३ ॥

अध्यायिन्यदेशकालात् ॥ ५०४ ॥ —अ० ४ । ४ । ७१ ॥

जिन देश और कालों में पढ़ने का निषेध है, उन प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो। जैसे—श्मशानेऽधीते श्माशानिकः; शौद्रसान्निधिकः; सन्धिवेलायामधीते सान्धिवेलिकः; अष्टम्यामधीते आष्टिमिकः; चातुर्दशिकः; पौर्णमासिकः इत्यादि ॥ ५०४ ॥

कठिनान्तप्रस्तारसंस्थानेषु व्यवहरति ॥ ५०५ ॥

—अ० ४ । ४ । ७२ ॥

व्यवहार करने अर्थ में कठिनान्त प्रस्तार और संस्थान प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—कुलकठिने व्यवहरति कौलकठिनिकः; कौटुम्बकठिनिकः; प्रस्तारे व्यवहरति प्रास्तारिकः; सांस्थानिकः इत्यादि ॥ ५०५ ॥

निकटे वसति ॥ ५०६ ॥ —अ० ४ । ४ । ७३ ॥

वसने अर्थ में सप्तमीसमर्थ निकट प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय हो। जैसे—निकटे वसति नैकटिकः ॥ ५०६ ॥

प्राग्घिताद्यत् ॥ ५०७ ॥ —अ० ४ । ४ । ७५ ॥

प्रथम ठक् प्रत्यय का अधिकार कर आये हैं, उसकी समाप्ति यहां से समझनी चाहिये। क्योंकि वहति शब्द अगले सूत्र में है, उस अधिकार के रहते ही दूसरा अधिकार यत् प्रत्यय का करते हैं, इसका दृष्टान्त भी पूर्व दे चुके हैं।

यहां से ले के (तस्मै हितम्) इस अधिकार के पूर्व पूर्व जो जो अर्थ कहेंगे, उन उन में सामान्य करके यत् प्रत्यय का अधिकार समझना चाहिये। जैसे—रथ वहति रथ्यः; युग्यः इत्यादि ॥ ५०७ ॥

तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम् ॥ ५०८ ॥—अ० ४ । ४ । ७६ ॥

ले चलने अर्थ में द्वितीयासमर्थ रथ युग और प्रासङ्ग प्रातिपदिक से यत् प्रत्यय होवे। जैसे—रथं वहति रथ्यः; युग्यः; प्रासङ्ग्यः।

रथ शब्द से सम्बन्धसामान्य शेष अर्थ में भी यत् प्रत्यय होता है। [जैसे—] रथं वहति रथ्यः; रथस्य वोढा रथ्यः। यहां प्रयोग और अर्थ में कुछ भी भेद नहीं है, फिर दोनों जगह करने का प्रयोजन यह है कि जब तदन्तविधि मान के द्विगुसंज्ञक रथ शब्द से प्रत्यय करेंगे, तब शेष अर्थ में प्राग्दीव्यतीय होने से (द्विगोर्लु०) इससे प्रत्यय का लुक् हो जावेगा। जैसे—द्वयोर्रथयोर्वोढा द्विरथः। और जब द्वौ रथौ वहति, ऐसा विग्रह करें, तब द्विरथ्यः ऐसा प्रयोग होगा।

इसी प्रकार हल और सीर शब्दों से भी दोनों जगह एक ही प्रत्यय कहा है, उसका भी यही प्रयोजन है ॥ ५०८ ॥

संज्ञायां जन्याः ॥ ५०९ ॥ —अ० ४ । ४ । ८२ ॥

ले जाने अर्थ में बधूवाची द्वितीयासमर्थ जनी प्रातिपदिक से संज्ञा वाच्य रहे, तो यत् प्रत्यय निपातन किया है । जैसे—जनीं बधूं वहन्ति ते जन्याः । विवाह के समय जो बरात जाती है, उसको जन्या कहते हैं ॥ ५०९ ॥

विध्यत्यधनुषा ॥ ५१० ॥ —अ० ४ । ४ । ८३ ॥

वेधने अर्थ में धनुष् करण न हो, तो द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों से यत् प्रत्यय होवे । जैसे—पादौ विध्यति पद्या दूर्वा; कण्ठं विध्यति कण्ठ्यो रसः ।

यहां 'धनुष् का निषेध' इसलिये है कि—धनुषा विध्यति; शत्रुं विध्यति, यहां उभयत्र प्रत्यय न होवे ॥ ५१० ॥

धनगणं लब्धा ॥ ५११ ॥ —अ० ४ । ४ । ८४ ॥

लाभ होने का कर्त्ता वाच्य रहे, तो द्वितीयासमर्थ धन और गण शब्दों से यत् प्रत्यय होवे । जैसे—धनं लब्धा धन्यः; गणं लब्धा गण्यः ॥ ५११ ॥

गृहपतिना संयुक्ते ञ्यः ॥ ५१२ ॥ —अ० ४ । ४ । ९० ॥

यहां पूर्वसूत्र से संज्ञा की अनुवृत्ति आती है । संयुक्त अर्थ में तृतीयासमर्थ गृहपति प्रातिपदिक से संज्ञा अभिधेय हो, तो ञ्य प्रत्यय होवे । जैसे—गृहपतिना संयुक्तो गार्हपत्यः ।

यहां 'संज्ञा' ग्रहण इसलिये है कि—'गार्हपत्य' दक्षिणाग्नि का नाम न होजावे ॥ ५१२ ॥

नौवयोधर्मविषमूलमूलसीतातुलाभ्यस्तार्य्यतुल्याप्राप्य-वध्यानाम्यसमसमितसम्मितेषु ॥ ५१३ ॥ —अ० ४ । ४ । ९१ ॥

तृतीयासमर्थ नौ आदि प्रातिपदिकों से तार्य आदि अर्थों में यथासंख्य करके यत् प्रत्यय होवे। जैसे—नौ शब्द से तैरने अर्थ में—नावा तार्यं नाव्यम्; वयस शब्द से तुल्य अर्थ में—वयसा तुल्यं वयस्यं मित्रम्; धर्म्म शब्द से प्राप्त होने योग्य अर्थ में—धर्मेण प्राप्यो धर्म्योऽपवर्गः; विषशब्द से मारने योग्य अर्थ में—विषेण वध्यो विष्यः पापी; मूल शब्द से नमाने अर्थ में—मूलेनानाम्यं मूल्यम्; दूसरे मूल शब्द से सम अर्थ में—मूलेन समो मूल्यो घटः; सीताशब्द से चौकस करने अर्थ में—सीतया समितं सीत्यं क्षेत्रम्; तुला शब्द से तोलने अर्थ में—तुलया सम्मितं तुल्यं धान्यम् ॥ ५१३ ॥

धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते ॥ ५१४ ॥ —अ० ४। ४। ९२॥

अनपेत अर्थात् युक्त अर्थ में पञ्चमीसमर्थ पथिन् अर्थ और न्याय प्रातिपदिक से यत् प्रत्यय होता है। जैसे—धर्मादनपेतं धर्म्यम्; पथोऽनपेतं पथ्यम्; अर्थ्यम्; न्याय्यम् ॥ ५१४ ॥

छन्दसो निर्मिते ॥ ५१५ ॥ —अ० ४। ४। ९३॥

निर्माण अर्थ में तृतीयासमर्थ छन्दस् प्रातिपदिक से यत् प्रत्यय हो। जैसे—छन्दसा निर्मितः छन्दस्यः, यहां छन्दश्शब्द इच्छा का पर्यायवाची है ॥ ५१५ ॥

उरसोऽण् च ॥ ५१६ ॥ —अ० ४। ४। ९४॥

निर्मित अर्थ में तृतीयासमर्थ उरस् शब्द से अण् और चकार से यत् प्रत्यय भी हो। जैसे—उरसा निर्मितः औरसः; उरस्यः पुत्रः ॥ ५१६ ॥

हृदयस्य प्रियः ॥५१७॥ —अ० ४ । ४ । ९५ ॥

प्रिय अर्थ में षष्ठीसमर्थ हृदय शब्द से यत् प्रत्यय हो । जैसे—हृदयस्य प्रियो हृद्यो धर्मः; हृद्यो देशः; हृद्या कन्या; हृद्यं वनम्[1] ॥ ५१७ ॥

तत्र साधुः ॥५१८॥ —अ० ४ । ४ । ९८ ॥

साधु अर्थ में सप्तमीसमर्थ प्रातिपदिक से यत् प्रत्यय हो । जैसे—सामसु साधुः सामन्यः; वेमन्यः; कर्मण्यः; शरण्यः । साधु प्रवीण वा योग्य का नाम है ॥ ५१८ ॥

सभाया यः ॥५१९॥ —अ० ४ । ४ । १०५ ॥

साधु अर्थ में सप्तमीसमर्थ सभा शब्द से य प्रत्यय हो । जैसे—सभायां साधुः सभ्यः, यहां य और यत् में स्वर का भेद है, उदाहरण का नहीं ॥ ५१९ ॥

ढश्छन्दसि ॥५२०॥ —अ० ४ । ४ । १०६ ॥

साधु अर्थ में जो वेदविषय हो, तो सभा शब्द से ढ प्रत्यय हो । जैसे—सभेयोऽस्य युवा यजमानस्य वीरो जायताम् ॥५२०॥

समानतीर्थे वासी ॥५२१॥ —अ० ४ । ४ । १०७ ॥

वसने अर्थ में सप्तमीसमर्थ समानतीर्थ शब्द से यत् प्रत्यय हो ॥५२१॥

---

१. यहां सर्वत्र हृदय शब्द को (हृदयस्य हृल्लेख०) इस सूत्र से हृत् आदेश हो जाता है ॥

तीर्थे ये ॥५२२॥ —अ० ६ । ३ । ८७ ॥

तीर्थ उत्तरपद परे हो, तो समान शब्द को स आदेश होवे। जैसे—समाने तीर्थे वसति सतीर्थ्यो ब्रह्मचारी[1] ॥५२२॥

समानोदरे शयित ओ चोदात्तः ॥५२३॥
—अ० ४ । ४ । १०८ ॥

सोने अर्थ में सप्तमीसमर्थ समानोदर शब्द से यत् प्रत्यय और समानोदर के ओकार को उदात्त हो। [जैसे—] समान उदरे शयितः समानोदर्य्यो भ्राता ॥५२३॥

सोदराद्यः ॥५२४॥ —अ० ४ । ४ । १०९ ॥

सोने अर्थ में सप्तमीसमर्थ सोदर शब्द से यत् प्रत्यय हो ॥५२४॥

विभाषोदरे ॥५२५॥ —अ० ६ । ३ । ८८ ॥

उदर शब्द के परे यत् प्रत्यय हो, तो समान शब्द को विकल्प करके स आदेश होवे। जैसे—समानोदरे शयितः सोदर्यो भ्राता[2] ॥५२५॥

---

१. यहां तीर्थ उसको कहते हैं जो संसार के दुःखों से पार कर देवे। सो पढ़ानेवाला आचार्य्य और वेदविद्या समझनी चाहिए। जिनका एक गुरु पढ़ानेहारा और वेद का पाठ साथ हो, ये सतीर्थ्य कहावें ॥

२. समानोदर्य्य और सोदर्य्य उन भाइयों के नाम हैं कि जो एक माता के उदर से उत्पन्न हुए हों। और जिनकी माता दो और पिता एक होवे उनके ये नाम नहीं हो सकते हैं ॥

भवे छन्दसि ॥५२६॥ —अ० ४ । ४ । ११० ॥

भव अर्थ और वैदिक प्रयोगों में सप्तमीसमर्थ प्रातिपदिकों से यत् प्रत्यय हो ।

यहां छन्द का अधिकार इस पाद की समाप्ति तक, और भवाधिकार (समुद्राभ्राद् घः) इससे पूर्व पूर्व जानना चाहिए । यह अण् और घ आदि प्रत्ययों का अपवाद है। [जैसे—] मेध्याय च विद्युत्याय च नमः इत्यादि ॥५२६॥

पूर्वैः कृतमिनियौ च ॥५२७॥ —अ० ४ । ४ । १३३ ॥

कृत अर्थ में तृतीयासमर्थ पूर्व शब्द से इनि तथा य और चकार से ण प्रत्यय होवें । जैसे—पूर्वैः कृतं कर्म पूर्वि; पूर्व्यम्; पूर्वीणम् ॥५२७॥

अद्भिः संस्कृतम् ॥५२८॥ —अ० ४ । ४ । १३४ ॥

संस्कृत अर्थ में तृतीयासमर्थ अप् शब्द से यत् प्रत्यय हो । जैसे—अद्भिः संस्कृतम् अप्यं हविः ॥५२८॥

सोममर्हति यः ॥५२९॥ —अ० ४ । ४ । १३७ ॥

योग्यता अर्थ में द्वितीयासमर्थ सोम शब्द से य प्रत्यय हो । [जैसे—] सोममर्हति सोम्यः ॥५२९॥

मये च ॥५३०॥ —अ० ४ । ४ । १३८ ॥

जिन जिन अर्थों में मयट् प्रत्यय विधान किया है, उन उन अर्थों और उन्हीं समर्थविभक्तियों से सोम शब्द से य प्रत्यय हो । जैसे—सोमस्य विकारोऽवयवो वा सोम्यं मधु इत्यादि ॥५३०॥

शिवशमरिष्टस्य करे ॥५३१॥ —अ० ४ । ४ । १४३ ॥

करने अर्थ में शिव शम् और अरिष्ट शब्दों से तातिल् प्रत्यय हो। जैसे—शिवस्य करः शिवतातिः; शन्तातिः; अरिष्टतातिः ॥५३१॥

भावे च ॥५३२॥ —अ० ४ । ४ । १४४ ॥

भावार्थ में भी शिव शम् और अरिष्ट प्रातिपदिकों से तातिल् प्रत्यय हो। जैसे—शिवस्य भावः शिवतातिः; शन्तातिः; अरिष्टतातिः ॥५३२॥

॥ इति चतुर्थाध्यायः समाप्तः ॥

अथ पञ्चमाध्याय आरभ्यते—

प्राक्क्रीताच्छः ॥५३३॥ —अ० ५ । १ । १ ॥

क्रीताधिकार से पूर्व पूर्व छ प्रत्यय का अधिकार किया जाता है। यहां से आगे सामान्य करके सब अर्थों में छ प्रत्यय होगा। जैसे—घटाय हिता घटीया मृत्तिका इत्यादि ॥५३३॥

उगवादिभ्यो यत् ॥५३४॥ —अ० ५ । १ । २ ॥

क्रीत से पूर्व पूर्व जो अर्थ कहे हैं, उनमें उवर्णान्त और गवादि प्रातिपदिकों से यत् प्रत्यय हो। यह छ प्रत्यय का अपवाद है।

[जैसे—] शङ्कवे हितं शङ्कव्यं दारु; पिचव्यः कार्पासः; कमण्डलव्या मृत्तिका इत्यादि। गवादिकों से—गवे हितं गव्यम्; हविष्यम्; मेधायै हितं मेध्यम् इत्यादि ॥५३४॥

तस्मै हितम् ॥ ५३५ ॥ —अ० ५ । १ । ५ ॥

हित नाम उपकारी का है, उस हित अर्थ में चतुर्थीसमर्थ प्रातिपदिक से छ प्रत्यय हो। जैसे—रोगिणे हितं रोगीयमौषधम्; मात्रीयः पित्रीयो वा पुत्रः; वत्सेभ्यो हितो गोधुक् वत्सीयः; गर्गेभ्यो हितं गर्गीयं शास्त्रम् इत्यादि ॥५३५॥

शरीराऽवयवाद्यत् ॥ ५३६ ॥ —अ० ५ । १ । ६ ॥

हित अर्थ में प्राणियों के अवयववाची प्रातिपदिकों से यत् प्रत्यय हो। यह सूत्र छ प्रत्यय का अपवाद है । [जैसे—] दन्तेभ्यो हितं दन्त्यं मञ्जनम्; कण्ठ्यो रसः; नाभ्यम्; नस्यम्; पद्यम्; मूर्द्धन्यः इत्यादि ॥५३६॥

आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात्खः ॥ ५३७॥

—अ० ५ । १ । ९ ॥

हित अर्थ में चतुर्थीसमर्थ आत्मन् विश्वजन और भोगोत्तरपद प्रातिपदिक से ख प्रत्यय हो। जैसे—आत्मने हितमात्मनीनम्[1]; विश्वजनेभ्यो हितं विश्वजनीनम्। भोगोत्तरपदों से—मातृभोगाय हितो मातृभोगीणः इत्यादि ॥५३७॥

वा०—पञ्चजनादुपसङ्ख्यानम् ॥ ५३८ ॥

पंचजन शब्द से भी ख प्रत्यय होवे। जैसे—पंचजनाय हितं पंचजनीनम् ॥५३८॥

---

१. यहां (आत्माध्वानौ खे) इस सूत्र से ख प्रत्यय के परे नकारान्त आत्मन् शब्द को प्रकृतिभाव हो जाता है ॥

वा०--सर्वजनाट्ठञ् खश्च ।।५३९।।

हित अर्थ में सर्वजन शब्द से ठञ् और ख प्रत्यय हों । जैसे—सर्वजनाय हितं सार्वजनिकम्; सर्वजनीनम् ।।५३९।।

वा०--महाजनाट्ठञ् नित्यम् ।।५४०।।

महाजन शब्द से ठञ् प्रत्यय नित्य हो । जैसे—महाजनाय हितं माहाजनिकम्[1] ।।५४०।।

वा०--राजाचार्याभ्यां तु नित्यम् ।।५४१।।

भोग शब्द जिनके उत्तरपद में हो, ऐसे राजन् और आचार्य्य शब्दों से ख प्रत्यय नित्य होवे । जैसे—राजभोगाय हितो राजभोगीनः ।।५४१।।

वा०--आचार्य्यादणत्वञ्च ।।५४२।।

आचार्य्य शब्द से परे णत्व न होवे । जैसे—आचार्य्य-भोगीनः । यहां केवल राजन् और आचार्य्य शब्दों से ख नहीं होता, किन्तु वाक्य ही बना रहता है ।।५४२।।

सर्वपुरुषाभ्यां णढञौ ।।५४३।। —अ० ५ । १ । १० ।।

हित अर्थ में चतुर्थीसमर्थ सर्व और पुरुष प्रातिपदिकों से यथासंख्य करके ण और ढञ् प्रत्यय हों । जैसे—सर्वस्मै हितं सार्वम्; पुरुषाय हितं पौरुषेयम् ।।५४३।।

---

१. यहां विश्वजन आदि शब्दों से कर्मधारय समास में और महाजन शब्द से तत्पुरुष समास में प्रत्ययविधान समझना चाहिए, और अन्य समास में छ प्रत्यय ही होगा । जैसे—विश्वजनीयम्; पञ्चजनीयम्; सर्वजनीयम्; महाजनीयम् ।।

वा०—सर्वाणस्य वा वचनम् ॥५४४॥

सर्व शब्द से ण प्रत्यय विकल्प करके हो। जैसे—सर्वाय हित: सर्वीय: ॥५४४॥

वा०—पुरुषाद्वधविकारसमूहतेनकृतेषु ॥५४५॥

षष्ठीसमर्थ पुरुष शब्द से वध विकार और समूह अर्थों में तथा तृतीयासमर्थ से कृत अर्थ में ढञ् प्रत्यय हो। जैसे—पौरुषेयो वध:, पौरुषेयो विकार:, पौरुषेय: समूह:, पौरुषेयो ग्रन्थ: ॥५४५॥

तदर्थं विकृतेः प्रकृतौ ॥५४६॥ —अ० ५। १। १२॥

प्रकृति अर्थात् कारण जहां अभिधेय रहे, वहां चतुर्थीसमर्थ विकृतिवाची प्रातिपदिक से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—अङ्गारेभ्यो हितानि काष्ठानि अङ्गारीयाणि काष्ठानि; प्राकारीया इष्टका; शङ्कव्यं दारु; पिचव्य: कार्पास: इत्यादि।

यहां 'तदर्थं' ग्रहण इसलिये है कि—यवानां धाना:; धानानां सक्तव:, यहां प्रत्यय न हो। 'विकृति' ग्रहण इसलिये है कि—उदकार्थ: कूप:। 'प्रकृति' ग्रहण इसलिये है कि—अस्यर्था कोशी[1], यहां छ प्रत्यय न हो ॥५४६॥

तदस्य तदस्मिन् स्यादिति[2] ॥५४७॥

—अ० ५। १। १६॥

---

१. यहाँ प्रकृतिग्रहण से उपादानकारण समझना चाहिये, क्योंकि विकृति शब्द इसीलिये पढ़ा है। तलवार का उपादानकारण लोहा है, और म्यान नहीं, इसी से यहां छ प्रत्यय नहीं होता ॥

२. इस सूत्र में स्यात् क्रिया सम्भावना अर्थ में है कि उसका वा उसमें जो होने का सम्भव हो, और इति शब्द विवक्षा के लिये है, कि उससे प्रत्ययार्थ विवक्षित हो ॥

षष्ठ्यर्थ और सप्तम्यर्थ में स्यात् समानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से यथाविहित प्रत्यय हों। [जैसे—] प्राकारमासामिष्टकानां स्यादिति प्राकारीया इष्टकाः; प्रासादीयं दारु; प्राकारोऽस्मिन् देशे स्यात् प्राकारीयो देशः, प्रासादीया भूमिः इत्यादि।

प्रासादो देवदत्तस्य स्यात्, यहाँ प्रत्यय इसलिये नहीं होता कि यहां प्रकृति विकृति का प्रकरण है, देवदत्त प्रासाद का कारण नहीं है ॥५४७॥

प्राग्वतेष्ठञ् ॥५४८॥ —अ० ५। १। १८॥

यह अधिकार सूत्र है। (तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः) इस सूत्र से पूर्व पूर्व जो जो अर्थ कहें, उन उन में सामान्य से ठञ् प्रत्यय होगा। जैसे—चान्द्रायणं वर्त्तयति चान्द्रायणिकः इत्यादि ॥५४८॥

आर्हादगोपुच्छसङ्ख्यापरिमाणाट्ठक् ॥५४९॥

—अ० ५। १। १९॥

ठञ् अधिकार के अन्तर्गत यह ठक् प्रत्यय का अधिकार उसका बाधक किया है। (तदर्हति) इस सूत्र में जो अर्ह शब्द है, वहां तक ठक् प्रत्यय का अधिकार जानना चाहिये, परन्तु आङ् उपसर्ग यहां अभिविधि अर्थ में है। इसी से अर्ह अधिकार में भी ठक् होता है।

गोपुच्छ संख्या और परिमाणवाचियों से ठक् का निषेध होने से सब अर्थों में ठञ् ही होता है। जैसे—गोपुच्छेन क्रीतं गोपुच्छिकम्। संख्या—षाष्टिकम्। परिमाण—प्रास्थिकम्; कौडविकम् इत्यादि।

॥५४९॥

संख्याया अतिशदन्ताया: कन् ॥५५०॥

—अ० ५। १। २२॥

जिस संख्या के अन्त में ति और शत् शब्द न हों; उससे आर्हीय अर्थों में ठक् प्रत्यय हो । यह ठञ् का अपवाद है । जैसे— पञ्चभिः क्रीतः घटः पञ्चकः; बहुकः, गणकः ।

यहां 'तिदन्त शदन्त का निषेध' इसलिये है कि—साप्ततिकः; चत्वारिंशत्कः, यहां कन् प्रत्यय न होवे ॥५५०॥

अर्द्धचर्द्धपूर्वद्विगोर्लुगसंज्ञायाम् ॥५५१॥

—अ० ५ । १ । २८ ॥

जिस प्रातिपदिक के पूर्व अर्द्धचर्द्ध हो, उस और द्विगुसमास प्रातिपदिक से अर्हीय अर्थों में संज्ञाविषय को छोड़ के प्रत्यय का लुक् हो । जैसे—अर्द्धचर्द्धकंसेन क्रीतमर्द्धचर्द्धकंसम्; द्विकंसम्; त्रिकंसम्; अर्द्धचर्द्धशूर्पम्, द्विशूर्पम्, त्रिशूर्पम् ।

यहां 'संज्ञा का निषेध' इसलिये है कि—पाञ्चलोहितिकम्, पांचकपालिकम्, यहां लुक् न होवे ॥५५१॥

तेन क्रीतम् ॥५५२॥ —अ० ५ । १ । ३७ ॥

ठञ् से लेके तेरह (१३) प्रत्यय हैं, उनका अर्थ और समर्थविभक्ति इसी सूत्र से जानना चाहिये ।

क्रीत अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिक से यथाविहित ठञ् आदि प्रत्यय होवें । जैसे—सप्तत्या क्रीतं साप्ततिकम्; आशीतिकम्; नैष्किकम्; पाणिकम्; पादिकम्; माषिकम्; शत्यम्; शतिकम् इत्यादि[1] ॥५५२॥

---

१. देवदत्तेन क्रीतम् इत्यादि वाक्यों में प्रत्यय इसलिये नहीं होता कि लोक में दैवदत्तिक आदि शब्दों से क्रीत अर्थ का बोध नहीं होता ॥

तस्य निमित्तं संयोगोत्पातौ[1] ॥५५३॥

—अ० ५ । १ । ३८ ॥

जो निमित्त अर्थ में संयोग वा उत्पातसम्बन्धी होवे, तो षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिक से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—शतस्य निमित्तं संयोगः शत्यः; शतिकः; साहस्रः। शतस्य निमित्तमुत्पातः शत्यः शतिकः; साहस्र इत्यादि ॥५५३॥

वा०—तस्य निमित्तप्रकरणे वातपित्तश्लेष्मभ्यः शमनकोपनयोरुपसङ्ख्यानम् ॥५५४॥

शांति और कुपित होने अर्थ में वात पित्त और श्लेष्म शब्दों से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—वातस्य शमनं कोपनं वा वातिकम्; पैत्तिकम्; श्लैष्मिकम् ॥५५४॥

वा०—सन्निपाताच्च ॥५५५॥

सन्निपात शब्द से भी शान्ति और कोप अर्थ में ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—सन्निपातस्य शमनं कोपनं वा सान्निपातिकम्।

ये दोनों वार्त्तिक अपूर्वविधायक हैं, क्योंकि इन शब्दों से ठक् प्रत्यय किसी सूत्र करके प्राप्त नहीं है ॥५५५॥

सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ ॥५५६॥

—अ० ५ । १ । ४१ ॥

---

१. अनुकूल वा प्रतिकूल प्राणी तथा अप्राणी के साथ सम्बन्ध होने को संयोग कहते हैं। और उत्पात उसको कहते हैं जो कोई अकस्मात् आश्चर्य्यरूप कार्य्य होवे, उससे किसी दूसरे कार्य्य का होना समझा जावे। जैसे पीली बिजुली चमके तो वायु अधिक चले इत्यादि। यह एक पदार्थ-विद्या की बात है ॥

संयोग और उत्पातसम्बन्धी निमित्त अर्थ में षष्ठीसमर्थ सर्वभूमि और पृथिवी प्रातिपदिक से यथासंख्य करके अण् और अञ् प्रत्यय होवें। जैसे—सर्वभूमेर्निमित्तं संयोग उत्पातो वा सार्वभौमः; पार्थिवो वा। यहां अनुशतिकादिगण में होने से सर्वभूमि शब्द को उभयपदवृद्धि होती है ।।५५६।।

तस्येश्वरः ।।५५७।। —अ० ५ । १ । ४२ ।।

षष्ठीसमर्थ सर्वभूमि और पृथिवी प्रातिपदिक से ईश्वर अर्थ में यथासंख्य करके अण् और अञ् प्रत्यय होवें। जैसे—सर्वभूमेरीश्वरः सार्वभौमः; पार्थिवो वा ।।५५७।।

तत्र विदित इति च ।।५५८।। —अ० ५ । १ । ४३ ।।

सप्तमीसमर्थ सर्वभूमि और पृथिवी शब्द से विदित नाम प्रसिद्धि अर्थ में अण् तथा अञ् प्रत्यय हों। जैसे—सर्वभूमौ विदितः सार्वभौमः; पार्थिवो वा ।।५५८।।

तस्य वापः ।।५५९।। —अ० ५ । १ । ४५ ।।

षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिक से खेत अर्थ वाच्य रहे, तो यथाविहित प्रत्यय हों। वाप कहते हैं खेत को, क्योंकि उसमें जौ आदि अन्न बोये जाते हैं। [जैसे—] प्रस्थस्य वापः क्षेत्रं प्रास्थिकम्; द्रौणिकम्; खारिकम् इत्यादि ।।५५९।।

तदस्मिन् वृद्धयायलाभशुल्कोपदा दीयते ।। ५६० ।।
—अ० ५ । १ । ४७ ।।

सप्तम्यर्थ में प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से यथाविहित प्रत्यय हों, जो वृद्धि आय लाभ शुल्क और उपदा ये अर्थ दीयते क्रिया के कर्मवाच्य होवें तो।

जो द्रव्य व्याज में देते हैं उसको वृद्धि कहते हैं। ग्राम आदि में जो जमीदार का भाग होता है वह आय। जो दुकानदारी के व्यवहार में मूल वस्तु से अधिक द्रव्य की प्राप्ति है, उसको लाभ। राजा के भाग को शुल्क और घूंस लेने को उपदा कहते हैं।

जैसे—पञ्चास्मिन् वृद्धिर्वा आयो वा लाभो वा उपदा वा दीयते पञ्चकः; सप्तकः; शत्यः; शतिकः; साहस्रः इत्यादि ॥५६०॥

वा०—चतुर्थ्यर्थ उपसङ्ख्यानम् ॥ ५६१ ॥

वृद्धि आदि दीयते क्रिया के कर्मवाच्य हों, तो चतुर्थी के अर्थ में भी प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से यथाविहित प्रत्यय होवें। जैसे—पञ्चास्मै वृद्धिर्वा आयो वा लाभो वा उपदा वा दीयते पञ्चको देवदत्तः इत्यादि ॥५६१॥

तद्धरति वहत्यावहति भाराद्वंशादिभ्यः ॥ ५६२ ॥

—अ० ५ । १ । ५० ॥

द्वितीयासमर्थ, वंश आदि गणपठित शब्दों से परे जो भार शब्द, तदन्त से हरति वहति और आवहति क्रियाओं के कर्त्ता अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—वंशभारं हरति वहति आवहति वा वांशभारिकः; कौटजभारिकः; बाल्वजभारिकः[१]।

१. इस सूत्र का दूसरा अर्थ यह भी होता है कि जो भाररूप वंशादि प्रातिपदिक हैं, उनसे ले जाने आदि अर्थों में यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—भारभूतान् वंशान् वहति वांशिकः, बाल्वजिकः इत्यादि ॥

यहां 'भार' ग्रहण इसलिये है कि—भारवंशं हरति, यहां न हो। और 'वंशादि' इसलिये है कि—व्रीहिभारं हरति, यहां भी प्रत्यय न हो ॥ ५६२ ॥

सम्भवत्यवहरति पचति ॥५६३॥ —अ० ५ । १ । ५२ ॥

द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिक से संभव समाप्ति और पकाने अर्थों में यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—प्रस्थं सम्भवति अवहरति पचति वा प्रास्थिकः; कौडविकः; खारीकः; प्रत्यक्षमनुमानं शब्दो वा यं व्यवहारं प्रति सम्भवति स प्रात्यक्षिकः; आनुमानिकः; शाब्दिको वा व्यवहारः इत्यादि ॥ ५६३ ॥

वा०—तत्पचतीति द्रोणादण् च ॥५६४॥

द्वितीयासमर्थ द्रोण प्रातिपदिक से पकाने अर्थ में अण् और ठञ् प्रत्यय होवें। जैसे—द्रोणं पचति द्रौणी द्रौणिकी वा ब्राह्मणी ॥ ५६४ ॥

सोऽस्यांशवस्नभृतयः ॥५६५॥ —अ० ५ । १ । ५६ ॥

अंश मूल्य और सेवन अर्थों में प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से षष्ठी के अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—पञ्चांशाः वस्नानि भृतयो वाऽस्य व्यापारस्य पञ्चकः; सप्तकः; साहस्रः इत्यादि ॥ ५६५ ॥

तदस्य परिमाणम् ॥५६६॥ —अ० ५ । १ । ५७ ॥

षष्ठ्यर्थ में परिमाणवाची प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—प्रस्थः परिमाणमस्य प्रास्थिको राशिः; खारीकः; शत्यः; शतिकः; साहस्रः; द्रौणिकः; कौडविकः;

वर्षशतं परिमाणमस्य वार्षशतिकः; वार्षसहस्रिकः; षष्टिजीवितं परिमाणमस्य षाष्टिकः इत्यादि ।। ५६६ ।।

सङ्ख्यायाः संज्ञासङ्घसूत्राऽध्ययनेषु ।।५६७।।

—अ० ५ । १ । ५८ ।।

पूर्वसूत्र की अनुवृत्ति यहां चली आती है ।

संज्ञा सङ्घ सूत्र और अध्ययन अर्थों में परिमाणसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ संख्यावाची प्रातिपदिक से षष्ठी के अर्थ में यथाप्राप्त प्रत्यय होवें ।। ५६७ ।।

वा०—संज्ञायां स्वार्थे ।।५६८।।

संज्ञा अर्थ में कहे प्रत्यय स्वार्थ की संज्ञा में होवें । जैसे—पञ्चैव पञ्चकाः शकुनयः; त्रय एव त्रिकाः शालङ्कायनाः । सङ्घ अर्थ में—पञ्च परिमाणमस्य पञ्चकः सङ्घः; पञ्चका वृक्षाः; त्रिकः; अष्टको वा । सूत्र अर्थ में—अष्टावध्यायाः परिमाणमस्य सूत्रस्य अष्टकं पाणिनीयं सूत्रम्; पञ्चको गौतमो न्यायः; द्वादशिका जैमिनीया मीमांसा; चतुष्कं व्यासीयं सूत्रम्; दशकं वैयाघ्रपदीयम्; त्रिकं काशकृत्स्नम् ।

अध्यायों का समुदाय भी सङ्घ अर्थ में आ जाता है, फिर सूत्रग्रहण पृथक् इसलिये है कि—सङ्घ शब्द बहुधा प्राणियों के समुदाय में आता है । अध्ययन अर्थ में—पञ्चकोऽधीतः; सप्तकोऽधीतः; अष्टकः; नवकः इत्यादि ।। ५६८ ।।

वा०—स्तोमे डविधिः पञ्चदशाद्यर्थः ।।५६९।।

स्तोमपरिमाणसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ पञ्चदशादि प्रातिपदिक से षष्ठी के अर्थ में ड प्रत्यय होवे । जैसे—पञ्चदश

मन्त्राः परिमाणमस्य स्तोमस्य पञ्चदशः स्तोमः; सप्तदशः; एकविंशः इत्यादि ।। ५६९ ।।

वा०—शन्शतोर्डिनिश्छन्दसि ।।५७०।।

शन् और शत् जिनके अन्त में हों, उन प्रातिपदिकों से वैदिकप्रयोग विषय में डिनि प्रत्यय हो । जैसे—पञ्चदश दिनानि परिमाणमेषां पञ्चदशिनोऽर्द्धमासाः; त्रिंशिनो मासाः ।। ५७० ।।

वा०—विंशतेश्च ।।५७१।।

विंशति शब्द से भी डिनि प्रत्यय हो । जैसे—विंशतिः परिमाणमेषां विंशिनोऽङ्गिरसः ।। ५७१ ।।

पङ्क्तिविंशतित्रिंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्षष्टिसप्तत्यशीतिनवतिशतम् ।। ५७२।। —अ० ५ । १ । ५९ ।।

परिमाण अर्थ में पङ्क्ति आदि शब्द निपातन किये हैं । जो कुछ कार्य्य सूत्रों से सिद्ध नहीं होता, सो सब निपातन से सिद्ध जानना चाहिये । जैसे—पङ्क्ति शब्द में पञ्चन् शब्द के टि भाग का लोप और ति प्रत्यय किया है । पञ्च परिमाणमस्य तत् पंक्तिश्छन्दः ।

दो दशत् शब्द को विन् आदेश और शतिच् प्रत्यय हो । जैसे—द्वौ दशतौ परिमाणमेषान्ते विंशतिः पुरुषाः । तीन दशत् शब्दों को त्रिन् आदेश और शत् प्रत्यय । जैसे—त्रयो दशतः परिमाणमेषान्ते त्रिंशत् । चार दशत् शब्दों को चत्वारिन् आदेश और शत् प्रत्यय । जैसे—चत्वारो दशतः परिमाणमेषां ते चत्वारिंशत् । पांच दशत् शब्दों को पञ्चा आदेश और शत् प्रत्यय । जैसे—पञ्च दशतः परिमाणमेषां ते पञ्चाशत् । छः दशत्

शब्दों को षष् आदेश और ति प्रत्यय। जैसे—षड् दशतः परिमाणमेषां ते षष्टिः।

सात दशत् शब्दों को सप्त आदेश और ति प्रत्यय। जैसे—सप्त दशतः परिमाणमेषां ते सप्ततिः। आठ दशत् शब्दों को अशी आदेश और ति प्रत्यय। जैसे—अष्टौ दशतः परिमाणमेषां ते अशीतिः। नव दशत् शब्दों को नव आदेश और ति प्रत्यय। जैसे—नव दशतः परिमाणमेषां ते नवतिः। और दश दशत् शब्दों को श आदेश और त प्रत्यय निपातन किया है। जैसे—दश दशतः परिमाणमेषां ते शतम् ॥ ५७२ ॥

पञ्चद्दशतौ वर्गे वा ॥५७३॥ —अ० ५ । ४ । ६० ॥

यहां संख्यावाची पञ्च और दश शब्द से कन् प्राप्त है, उसका यह अपवाद है, और पक्ष में कन् भी हो जाता है।

पञ्चत् और दशत् ये डति प्रत्ययान्त वर्ग और परिमाण अर्थ में विकल्प करके निपातन किये हैं। जैसे—पञ्च परिमाणमस्य पञ्चद्वर्गः; दशद्वर्गः; पञ्चको वर्गः; दशको वर्गः ॥ ५७३ ॥

तदर्हति ॥५७४॥ —अ० ५ । १ । ६३ ॥

योग्यता अर्थ में द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिक से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—श्वेतच्छत्रमर्हति श्वेतच्छत्रिकः; वास्त्रयुग्मिकः; शत्यः; शतिकः इत्यादि ॥ ५७४ ॥

यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ ॥५७५॥ —अ० ५ । १ । ७१ ॥

यह सूत्र ठक् प्रत्यय का बाधक है।

योग्यता अर्थ में द्वितीयासमर्थ यज्ञ और ऋत्विज् प्रातिपदिक से यथासंख्य करके घ और खञ् प्रत्यय होवें। जैसे—यज्ञमर्हति यज्ञियः; ऋत्विजमर्हति स आर्त्विजीनो ब्राह्मणः ।। ५७५ ।।

वा०—यज्ञर्त्विग्भ्यां तत्कर्मार्हतीत्युपसङ्ख्यानम् ॥ ५७६ ॥

यज्ञ और ऋत्विज् शब्द से उन कर्मों के करने योग्य अर्थों में उक्त प्रत्यय हों। यह वार्त्तिक सूत्र का शेष है, क्योंकि यह विशेष अर्थ सूत्र से नहीं आता है। [जैसे—] यज्ञकर्मार्हति यज्ञियो देशः; ऋत्विक्कर्मार्हति आर्त्विजीनं ब्राह्मणकुलम्।

अब यहां तक अर्ह अधिकार पूरा हुआ। इसी से ठक् प्रत्यय के अधिकार की समाप्ति जानो। अब यहां से आगे केवल ठञ् प्रत्यय का ही अधिकार चलेगा ।। ५७६ ।।

पारायणतुरायणचान्द्रायणं वर्त्तयति ।।५७७।।

— अ० ५ । १ । ७२ ।।

द्वितीयासमर्थ पारायण तुरायण और चान्द्रायण प्रातिपदिक से वर्त्तन क्रिया का कर्त्ता वाच्य रहे, तो ठञ् प्रत्यय होवे। जैसे—पारायणं वर्त्तयति पारायणिकश्छात्रः; तुरायणं वर्त्तयति तौरायणिको यजमानः; चान्द्रायणं वर्त्तयति चान्द्रायणिको ब्राह्मणः ।। ५७७ ।।

संशयमापन्नः ।।५७८।। —अ० ५ । १ । ७३ ।।

प्राप्त होने अर्थ में द्वितीयसमर्थ संशय प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय होवे। जैसे—संशयमापन्नः सांशयिकश्चौरः ।। ५७८ ।।

योजनं गच्छति ॥ ५७९ ॥ —अ० ५ । १ । ७४ ।।

चलने अर्थ में द्वितीयासमर्थ योजन प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय हो। जैसे—योजनं गच्छति यौजनिकः ।। ५७९ ।।

वा०—क्रोशशतयोजनशतयोरुपसंख्यानम् ॥ ५८० ॥

चलने अर्थ में द्वितीयासमर्थ क्रोशशत और योजनशत प्रातिपदिक से भी ठञ् प्रत्यय हो। जैसे—क्रोशशतं गच्छति क्रौशशतिकः; यौजनशतिकः ॥ ५८० ॥

वा०—ततोऽभिगमनमर्हतीति च ॥ ५८१ ॥

यहां चकार से पूर्व वार्त्तिक की अनुवृत्ति आती है।

निरन्तर चलने अर्थ में पञ्चमीसमर्थ क्रोशशत और योजनशत शब्द से भी ठञ् प्रत्यय होवे। जैसे—क्रोशशतादभिगमनमर्हति क्रौशशतिको भिक्षुकः; यौजनशतिक आचार्यः ॥ ५८१ ॥

उत्तरपथेनाहृतं च ॥ ५८२ ॥ —अ० ५ । १ । ७७ ॥

यहां चकार से गच्छति क्रिया की अनुवृत्ति आती है।

ग्रहण करने और चलने अर्थ में तृतीयासमर्थ उत्तरपथ प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय होवे। जैसे—उत्तरपथेनाहृतमौत्तरपथिकम्; उत्तरपथेन गच्छति औत्तरपथिकः ॥ ५८२ ॥

वा०—आहृतप्रकरणे वारिजङ्गलस्थलकान्तारपूर्वपदादुपसंख्यानम् ॥ ५८३ ॥

ले आने और चलने अर्थ में वारि जङ्गल स्थल और कान्तार शब्द जिसके पूर्व हों, ऐसे द्वितीयासमर्थ पथ प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय हो। जैसे—वारिपथेनाहृतं वारिपथिकम्; वारिपथेन गच्छति वारिपथिकः; जङ्गलपथेनाहृतं जाङ्गलपथिकम; जङ्गलपथेन गच्छति जाङ्गलपथिकः; स्थलपथेनाहृतं स्थालपथिकम्; स्थलपथेन गच्छति स्थालपथिकः; कान्तारपथेनाहृतं कान्तारपथिकम्; कान्तारपथेन गच्छति कान्तारपथिकः ॥ ५८३ ॥

वा०—अजपथशङ्कुपथाभ्यां च ॥५८४॥

अजपथ और शङ्कुपथ शब्द से भी उक्त अर्थों में ठञ् प्रत्यय हो। जैसे—अजपथेनाहृतं गच्छति वा आजपथिकः; शङ्कुपथेनाहृतं गच्छति वा शाङ्कुपथिकः ॥५८४॥

वा०—मधुकमरिचयोरण् स्थलात् ॥५८५॥

मधुक और मरिच अभिधेय हों, तो स्थलशब्द से परे जो पथ प्रातिपदिक उससे ले आने अर्थ में अण् प्रत्यय होवे। जैसे—स्थलपथेनाहृतं स्थालपथं मधुकम्; स्थालपथं मरिचम् ॥५८५॥

कालात् ॥५८६॥ —अ० ५। १। ७८॥

यह अधिकार सूत्र है। यहां से आगे जो-जो प्रत्यय विधान करें, सो सो सामान्य करके कालवाची प्रातिपदिक से जानो। जैसे—मासेन निर्वृत्तं कार्यं मासिकम्; आर्द्धमासिकम्; सांवत्सरिकम् इत्यादि ॥५८६॥

तेन निर्वृत्तम् ॥५८७॥ —अ० ५। १। ७९॥

सिद्ध होने अर्थ में तृतीयासमर्थ कालवाची प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय होवे। जैसे—मुहूर्त्तेन निर्वृत्तं भोजनं मौहूर्त्तिकम्; प्राहरिकम्; सप्ताहेन निर्वृत्तो विवादः साप्ताहिकः; पाक्षिकः; अह्ना निर्वृत्तमाह्निकम् इत्यादि ॥५८७॥

तमधीष्टो भृतो भूतो भावी ॥५८८॥

—अ० ५। १। ८०॥

अधीष्ट कहते हैं सत्कारपूर्वक ठहरने को, जो धन देकर खरीद लिया हो उस नौकर को भृत, भूत हो चुकने को, और

भावी जो आगे होगा इसको समझना चाहिये। इन अधीष्ट आदि अर्थों में द्वितीयासमर्थ कालवाची प्रातिपदिकों से ठञ् प्रत्यय हो।

जैसे—मासमधीष्टो मासिक आचार्य:; पक्षम्भृत: पाक्षिक: कर्मकर:; सप्ताहभूत: साप्ताहिको व्याधि:; पौर्णमासीं भावी पौर्णमासिक उत्सव: इत्यादि ॥५८८॥

मासाद्वयसि यत्खञौ ॥५८९॥ —अ० ५। १। ८१॥

यह सूत्र ठञ् प्रत्यय का अपवाद है। यहां अधीष्ट आदि अर्थों का अधिकार तो है, परन्तु योग्यता के न होने से एक भूत अर्थ ही लिया जाता है।

द्वितीयासमर्थ मास शब्द से अवस्था गम्यमान होवे, तो यत् और खञ् प्रत्यय हों। जैसे—मासं भूतो मास्य:, मासीनो वा शिशु: ॥५८९॥

तेन परिजय्यलभ्यकार्य्यसुकरम् ॥५९०॥

—अ० ५। १। ९३॥

जीत सकने, प्राप्त होने योग्य, और जो अच्छे प्रकार सिद्ध हो, इन अर्थों से तृतीयासमर्थ कालवाची प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय होवे।

जैसे—पक्षेन परिजेतुं शक्यते पाक्षिक: सङ्ग्राम:; मासेन लभ्यं मासिकं धनम्; द्वादशाहेन कार्य्यं द्वादशाहिकं व्रतम्; वर्षेण सुकरो वार्षिक: प्रासाद: ॥५९०॥

तदस्य ब्रह्मचर्य्यम् ॥५९१॥ —अ० ५। १। ९४॥

प्रथमासमर्थ कालवाची प्रातिपदिक से षष्ठी के अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो, ब्रह्मचर्य्यं वाच्य रहे तो। जैसे—षट्त्रिंशदब्दा अस्य

ब्रह्मचर्य्यस्य षट्त्रिंशदाब्दिकं ब्रह्मचर्य्यम्; अष्टादशाब्दिकम्; नवाब्दिकम्।

इस सूत्र में जयादित्य ने द्वितीया विभक्ति काल के अत्यन्त संयोग में मान के अर्थ किया है। जो सूत्र में तो काल के साथ अत्यन्त संयोग है ही नहीं, उदाहरण में हो सकता है। फिर सूत्र में द्वितीया क्यों कर हो सकती है। और द्वितीयासमर्थ विभक्ति मानने से प्रत्ययार्थ का सम्बन्ध ब्रह्मचारी के साथ होता है। सो ऋषि लोगों के अभिप्राय से विरुद्ध है। क्योंकि मनुस्मृति में 'षट्त्रिंशदाब्दिकम्' यह पद ब्रह्मचर्य्य का विशेषण रक्खा है। फिर इन लोगों का अर्थ आदर के योग्य नहीं है ।।५९१।।

वा०--महानाम्न्यादिभ्यः षष्ठीसमर्थेभ्य उपसंख्यानम् ।।५९२।।

षष्ठीसमर्थ महानाम्नी आदि प्रातिपदिकों से सामान्य अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो। जैसे—महानाम्न्या इदम्पदं माहानामिकम्; गौदानिकम् इत्यादि ।।५९२।।

वा०--तच्चरतीति च ।।५९३।।

यहां चकार से पूर्व वार्त्तिक की अनुवृत्ति आती है। महानाम्नी नाम ऋचाओं का है, उनके सहचारी अनुष्ठान का ग्रहण तत् शब्द से समझना चाहिये।

द्वितीयासमर्थ महानाम्नी आदि प्रातिपदिकों से आचरण अर्थ में ठञ् प्रत्यय होवे। जैसे—महानाम्नीश्चरति माहानामिकः[1]; आदित्यव्रतिकः इत्यादि ।।५९३।।

---

१. यहां नाम्नी शब्द में (भस्याढे तद्धिते) इस वार्त्तिक से पुंवद्भाव होकर नान्त अङ्ग के टिभाग का लोप हो जाता है।।

वा०--अवान्तरदीक्षादिभ्यो डिनिः ।।५९४।।

द्वितीयासमर्थ अवान्तरदीक्षा आदि प्रातिपदिकों से आचरण अर्थ में डिनि प्रत्यय होवे। जैसे—अवान्तरदीक्षामाचरति अवान्तरदीक्षी; तिलव्रती इत्यादि ।।५९४।।

वा०—अष्टाचत्वारिंशतो ड्वुँश्च ।।५९५।।

यहां चरति क्रिया और डिनि प्रत्यय की अनुवृत्ति पूर्व वार्त्तिकों से आती है।

द्वितीयासमर्थ अष्टाचत्वारिंशत् प्रातिपदिक से आचरण अर्थ में ड्वुन् और डिनि प्रत्यय हों। जैसे—अष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि व्रतमाचरति अष्टाचत्वारिंशकः, अष्टाचत्वारिंशी ।।५९५।।

वा०—चातुर्मास्यानां यलोपश्च ।।५९६।।

यहां भी पूर्व की सब अनुवृत्ति आती है।

द्वितीयासमर्थ चातुर्मास्य प्रातिपदिक से आचरण अर्थ में ड्वुन् और डिनि प्रत्यय होवें। जैसे--चातुर्मास्यानि व्रतान्याचरति चातुर्मासकः, चातुर्मासी ।।५९६।।

वा०—चतुर्मासाण्ण्यो यज्ञे तत्र भवे ।।५९७।।

सप्तमीसमर्थ चतुर्मास शब्द से भव अर्थ यज्ञ होवे, तो ण्य प्रत्यय हो। जैसे—चतुर्षु मासेषु भवाश्चातुर्मास्या यज्ञाः ।।५९७।।

वा०—संज्ञायामण् ।।५९८।।

भवार्थ संज्ञा अभिधेय हो, तो सप्तमीसमर्थ चतुर्मास आदि शब्दों से अण् प्रत्यय होवे। जैसे—चतुर्षु मासेषु भवा चतुर्मासी पौर्णमासी; आषाढी; कार्त्तिकी; फाल्गुनी; चैत्री इत्यादि ।।५९८।।

तस्य च दक्षिणा यज्ञाख्येभ्यः ॥५९९॥

—अ० ५ । १ । ९४ ॥

षष्ठीसमर्थ यज्ञवाची प्रातिपदिकों से दक्षिणा अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो। जैसे—अग्निष्टोमस्य दक्षिणा आग्निष्टोमिकी; आश्वमेधिकी; वाजपेयिकी; राजसूयिकी इत्यादि।

यहां 'आख्या' ग्रहण इसलिये है कि—इस कालाधिकार में कालसमानाधिकरण यज्ञों का ही ग्रहण न हो जावे ॥५९९॥

तेन यथाकथाचहस्ताभ्यां णयतौ ॥६००॥

—अ० ५ । १ । ९७ ॥

यथाकथाच यह अव्ययशब्द अनादर अर्थ में आता है। और पूर्व सूत्र से 'दीयते' और 'कार्यम्' इन दो पदों की अनुवृत्ति आती है।

तृतीयासमर्थ यथाकथाच और हस्त प्रातिपदिक से देने और करने अर्थों में ण और यत् प्रत्यय यथासंख्य करके हों। जैसे—यथाकथाच दीयते कार्य्यं वा याथाकथाचम्; हस्तेन दीयते कार्य्यं वा हस्त्यम् ॥६००॥

सम्पादिनि ॥६०१॥ —अ० ५ । १ । ९८ ॥

यहां पूर्व से तृतीयासमर्थ की अनुवृत्ति आती है।

अवश्य सिद्ध होनेवाला कर्त्ता वाच्य रहे, तो तृतीयासमर्थ प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय होवे। जैसे—ब्रह्मचर्येण सम्पद्यते विद्या ब्राह्मचार्यिकी; उपकारेण सम्पद्यते औपकारिको धर्म्मः; धर्मेण सम्पद्यते धार्मिकं सुखम् इत्यादि ॥६०१॥

कर्म्मवेषाद्यत् ॥६०२॥ — अ० ५ । १ । १०० ॥

सम्पन्न होने अर्थ में तृतीयासमर्थ कर्म्म और वेष प्रातिपदिक से यत् प्रत्यय हो। यह ठञ् का अपवाद है। [जैसे—] कर्म्मणा सम्पद्यते कर्म्मण्यं शरीरम्; वेषेण सम्पद्यते वेष्यो नटः, वेष्या नटिनी।

यही वेष्या शब्द आज कल शकार से प्रवृत्त है, सो ठीक नहीं। क्योंकि जो अर्थ उनमें घट सकता है वह यही है। और विश प्रवेशने धातु से भी बन सकता है, परन्तु ठीक ठीक अर्थ गणिकाओं में नहीं घटता ॥६०२॥

तस्मै प्रभवति सन्तापादिभ्यः ॥६०३॥
—अ० ५ । १ । १०१ ॥

चतुर्थीसमर्थ सन्ताप आदि गणपठित प्रातिपदिकों से प्रभव अर्थात् सामर्थ्यवान् अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो। जैसे—सन्तापाय प्रभवति सान्तापिकः; संग्रामाय प्रभवति सांग्रामिकः; प्रवासाय प्रभवति प्रावासिकः ॥६०३॥

समयस्तदस्य प्राप्तम् ॥६०४॥ —अ० ५ । १ । १०४ ॥

प्राप्तसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ समय प्रातिपदिक से षष्ठी के अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो। जैसे—समयः प्राप्तोऽस्य सामयिक उद्वाहः, सामयिकं वस्त्रम्, सामयिको योगाभ्यासः, सामयिकमौषधम् इत्यादि ॥६०४॥

छन्दसि घस् ॥६०५॥ —अ० ५ । १ । १०६ ॥

यहां ऋतु शब्द से अण् प्रत्यय प्राप्त है, उसका यह अपवाद है।

प्राप्तसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ ऋतु प्रातिपदिक से षष्ठी के अर्थ में वैदिकप्रयोगविषयक ठञ् प्रत्यय होवे । जैसे—ऋतुः प्राप्तोऽस्य ऋत्वियः—अयन्ते योनिर्ऋत्वियः; यहां घस् प्रत्यय के सित् होने से भसंज्ञा होकर पदसंज्ञा का कार्य्य जश्त्व नहीं होता ॥६०५॥

प्रयोजनम् ॥६०६॥ —अ० ५ । १ । १०९ ॥

प्रयोजनसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से षष्ठी के अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो । जैसे—उपदेशः प्रयोजनमस्य औपदेशिकः; आध्यायनिकः; स्त्री प्रयोजनमस्य स्त्रैणः; पौंस्नः; धर्मः प्रयोजनमस्य धार्मिकः; वितण्डा प्रयोजनमस्य वैतण्डिकः; पारोक्षिकः इत्यादि ॥६०६॥

अनुप्रवचनादिभ्यश्छः ॥६०७॥ —अ० ५ । १ । १११ ॥

प्रयोजनसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ अनुप्रवचनादि गणपठित प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में छ प्रत्यय हो । ठञ् का अपवाद है । [जैसे—] अनुप्रवचनं प्रयोजनमस्य अनुप्रवचनीयम्; उत्थापनीयम्; अनुवासनीयम्; आरम्भणीयम् इत्यादि ॥६०७॥

वा०—विशिपूरिपतिरुहिपदिप्रकृतेरनात्सपूर्वपदादुपसंख्यानम् ॥६०८॥

प्रयोजनसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ विशि पूरि पति रुहि पदि इन ल्युट् प्रत्ययान्त धातुओं के प्रयोग जिनके अन्त में हों, उन प्रातिपदिकों से छ प्रत्यय होवे । जैसे—गृहप्रवेशनं प्रयोजनमस्य गृहप्रवेशनीयम्; प्रपापूरणीयम्; अश्वप्रपतनीयम्; प्रासादारोहणीयम्; गोप्रपदनं प्रयोजनमस्य गोप्रपदनीयम् ॥६०८॥

वा०—स्वर्गादिभ्यो यत् ॥ ६०९ ॥

प्रयोजनसमानाधिकरण स्वर्गादि प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में यत् प्रत्यय हो । जैसे—स्वर्गः प्रयोजनमस्य स्वर्ग्यम्; यशस्यम्; आयुष्यम् इत्यादि ॥६०९॥

वा०—पुण्याहवाचनादिभ्यो लुक् ॥६१०॥

प्रयोजनसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ पुण्याहवाचन आदि प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में विहित प्रत्यय का लुक् होवे । जैसे—पुण्याहवाचनं प्रयोजनमस्य पुण्याहवाचनम्:; स्वस्तिवाचनम्; शान्तिवाचनम् इत्यादि ॥६१०॥

समापनात्सपूर्वपदात् ॥६११॥ —अ० ५ । १ । ११२ ॥

प्रयोजनसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ समापन शब्द जिनके अन्त में हो, उन प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में छ प्रत्यय होवे । जैसे—छन्दः समापनं प्रयोजनमस्य छन्दः समापनीयम्; न्याय-समापनीयम्; व्याकरणसमापनीयम् इत्यादि ॥६११॥

तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः ॥ ६१२ ॥

—अ० ५ । १ । ११५ ॥

तुल्य अर्थ क्रिया होवे, तो तृतीयासमर्थ प्रातिपदिक से वति प्रत्यय होवे । जैसे—ब्राह्मणेन तुल्यं ब्राह्मणवत्; सिंहवत्; व्याघ्रवत् इत्यादि ।

यहां 'क्रिया' ग्रहण इसलिए है कि—जहां गुण और द्रव्य का सादृश्य हो वहां प्रत्यय न होवे । जैसे—भ्रात्रा तुल्यः स्थूलः; भ्रात्रा तुल्यः पिङ्गलः, यहां वति प्रत्यय न होवे ॥६१२॥

तदर्हम् ॥६१३॥ —अ० ५ । १ । ११७ ॥

अर्ह अर्थ में, द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिक से वति प्रत्यय होवे। जैसे—राजानमर्हति राजवत् पालनम्; ब्राह्मणवद्विद्याप्रचारः; ऋषिवत् इत्यादि ॥६१३॥

तस्य भावस्त्वतलौ ॥६१४॥ —अ० ५ । १ । ११९ ॥

जिस गुण के होने से शब्द का अर्थ के साथ वाच्यवाचक सम्बन्ध समझा जाता है, उस गुण की विवक्षा में षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिकमात्र से त्व और तल् प्रत्यय हों।

जैसे—ब्राह्मणस्य भावो ब्राह्मणत्वम्, ब्राह्मणता; तस्य भावस्तत्त्वम्, तत्ता; स्त्रीत्वम्; पुंस्त्वम्; स्थूलत्वम्, स्थूलता; कृशत्वम्, कृशता; चेतनत्वम्, चेतनता; जडत्वम्, जडता इत्यादि।

यहां से ले के इस पाद की समाप्तिपर्यन्त त्व और तल् प्रत्यय का अधिकार समझना चाहिए ॥६१४॥

पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा ॥६१५॥

—अ० ५ । १ । १२२ ॥

षष्ठीसमर्थ पृथु आदि गणपठित प्रातिपदिकों से भाव अर्थ में इमनिच् प्रत्यय विकल्प करके होवे, पक्ष में त्व और तल् प्रत्यय होवें।

जैसे--पृथोर्भावः प्रथिमा; म्रदिमा; महिमा; लघिमा; गरिमा; पृथुत्वम्, पृथुता; मृदुत्वम्, मृदुता; महत्त्वम्, महत्ता; लघुत्वम्, लघुता; गुरुत्वम्, गुरुता इत्यादि ॥६१५॥

वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ्च ॥६१६॥ —अ० ५ । १ । १२३ ॥

यहां चकार से इमनिच् और विकल्प की भी अनुवृत्ति आती है।

षष्ठीसमर्थ वर्णवाची और दृढादि प्रातिपदिकों से भाव अर्थ से ष्यञ् और इमनिच् प्रत्यय हो। जैसे—शुक्लस्य भावः शौक्ल्यम्, शुक्लिमा, शुक्लत्वम्, शुक्लता; कार्ष्ण्यम्, कृष्णिमा, कृष्णत्वम्, कृष्णता; नैल्यम्, नीलिमा, नीलित्वम्, नीलता इत्यादि। दृढादिकों से—दार्ढ्यम्, द्रढिमा, दृढत्वम्, दृढता; पाण्डित्यम्, पण्डितिमा, पण्डितत्वम्. पण्डितता; मधुरस्य भावो माधुर्य्यम्, मधुरिमा, मधुरत्वम्, मधुरता इत्यादि ॥६१६॥

गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च ॥६१७॥

—अ० ५। १। १२४॥

जिन शब्दों से शीत उष्ण आदि गुणों का बोध हो, उनको गुणवचन कहते हैं। यहां चकार भाव अर्थ का समुच्चय होने के लिये है।

षष्ठीसमर्थ गुणवाची और ब्राह्मणादि प्रातिपदिकों से भाव और कर्म अर्थ में ष्यञ् प्रत्यय होवे। जैसे—शीतस्य भावः कर्म वा शैत्यम्; औष्ण्यम्; शीतत्वम्, शीतता; उष्णत्वम्, उष्णता। ब्राह्मणादिकों से—ब्राह्मणस्य भावः कर्म्म वा ब्राह्मण्यम्; चौर्य्यम्; मौक्यम्; कौशल्यम्; चापल्यम्; नैपुण्यम् इत्यादि।

और अधिकार से त्व और तल् भी होते हैं। [जैसे—] ब्राह्मणत्वम्, ब्राह्मणता इत्यादि। यहां से आगे भाव और कर्म दोनों अर्थों का अधिकार चलेगा ॥६१७॥

वा०—चातुर्वर्ण्यादीनां स्वार्थ उपसंख्यानम् ॥ ६१८॥

चतुर्वर्ण आदि शब्दों से स्वार्थ में ष्यञ् प्रत्यय हो। जैसे—चत्वार एव वर्णाश्चातुर्वर्ण्यम्; चातुराश्रम्यम्; त्रैलोक्यम्;

ऐकस्वर्य्यम्; षाड्गुण्यम्; सैन्यम्; सान्निध्यम्; सामीप्यम्; औपम्यम्; सौख्यम् इत्यादि ॥६१८॥

स्तेनाद्यन्नलोपश्च ॥६१९॥ —अ० ५। १। १२५॥

भाव और कर्म अर्थ में स्तेन शब्द से यत् प्रत्यय और नकार का लोप होवे। जैसे—स्तेनस्य भावः कर्म वा स्तेयम् ॥६१९॥

सख्युर्यः ॥६२०॥ —अ० ५। १। १२६॥

भाव और कर्म अर्थ में सखि शब्द से य प्रत्यय होवे। जैसे—सख्युर्भावः कर्म वा सख्यम् ॥६२०॥

वा०—दूतवणिग्भ्यां च ॥ ६२१ ॥

दूत और वणिक् शब्दों से भी य प्रत्यय हो। जैसे—दूतस्य भावः कर्म वा दूत्यम्; वणिज्यम्। वणिक् शब्द का पाठ ब्राह्मणादिगण में होने से ष्यञ् प्रत्यय भी हो जाता है। जैसे—वाणिज्यम् ॥६२१॥

पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक् ॥६२२॥

—अ० ५। १। १२८॥

षष्ठीसमर्थ पति शब्द जिनके अन्त में हो, उन और पुरोहितादि प्रातिपदिकों से यक् प्रत्यय होवे भाव और कर्म अर्थ वाच्य रहे तो। जैसे—सेनापतेर्भावः कर्म वा सैनापत्यम्; वानस्पत्यम्; गार्हपत्यम्; बार्हस्पत्यम्; प्राजापत्यम्।

अधिकार के होने से त्व तल् भी होते हैं। जैसे—सेनापतित्वम्: सेनापतिता इत्यादि। पुरोहितादिकों से—पौरोहित्यम्; राज्यम्; बाल्यम्; पुरोहितत्वम्, पुरोहितता इत्यादि ॥६२२॥

यह पञ्चमाध्याय का प्रथम पाद पूरा हुआ ॥

अथ द्वितीयः पादः--

धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ् ।। ६२३ ।।

—अ० ५ । २ । १ ।।

यहां बहुवचन का निर्देश होने से धान्य के विशेषवाची शब्दों का ग्रहण होता है ।

षष्ठीसमर्थ धान्यविशेषवाची शब्दों से उत्पत्ति का स्थान खेत अर्थ वाच्य रहे, तो खञ् प्रत्यय हो । जैसे—गोधूमानां भवनं क्षेत्रं गोधूमोनम्; मौद्गीनम्; कौलत्थीनम् इत्यादि ।

यहां 'धान्यवाचियों का' ग्रहण इसलिये है कि—तृणानां भवनं क्षेत्रम्, यहां न हो। और 'खेत का' ग्रहण इसलिये है कि—गोधूमानां भवनं कुशूलम्, यहां भी खञ् प्रत्यय न होवे ।।६२३।।

तत्सर्वादेः पथ्यङ्गकर्मपत्रपात्रं व्याप्नोति ।। ६२४ ।।

—अ० ५ । २ । ७ ।।

सर्व शब्द जिनके आदि में हो, ऐसे पथिन् अङ्ग कर्मन् पत्र और पात्र द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों से व्याप्ति अर्थ में ख प्रत्यय होवे ।

जैसे—सर्वपथं व्याप्नोति सर्वपथीनं शकटम्; सर्वाण्यङ्गानि व्याप्नोति सर्वाङ्गीणमौषधम्; सर्वं कर्म व्याप्नोति सर्वकर्मीणः पुरुषः; सर्वपत्रीणः सारथिः; सर्वपात्रीणः सूपः इत्यादि ।।६२४।।

तस्य पाकमूले पील्वादिकर्णादिभ्यः कुणब्जाहचौ ।।६२५।।

—अ० ५ । २ । २४ ।।

पाक और मूल अर्थों में षष्ठीसमर्थ पील्वादि और कर्णादि गणपठित प्रातिपदिकों से यथासंख्य करके कुणप् और जाहच् प्रत्यय हों।

जैसे—पीलूनां पाकः पीलुकुणः; बदरकुणः; खदिरकुणः इत्यादि। कर्णादिकों से—कर्णस्य मूलं कर्णजाहम्; नखजाहम्; केशानां मूलं केशजाहम्; दन्तजाहम् इत्यादि ॥६२५॥

तेन वित्तश्चुञ्चुप्चणपौ ॥ ६२६ ॥

—अ० ५। २। २६॥

तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ज्ञात अर्थ में चुञ्चुप् और चणप् प्रत्यय हों। जैसे—विद्यया वित्तो ज्ञातो विद्याचुञ्चुः; उपदेशेन वित्त उपदेशचणः इत्यादि ॥६२६॥

विनञ्भ्यां नानाञौ न सह[1] ॥ ६२७ ॥

—अ० ५। २। २७॥

नसह अर्थात् पृथग्भाव अर्थ में वि और नञ् अव्यय प्रातिपदिकों से यथासंख्य करके ना और नाञ् प्रत्यय हों। जैसे—विना; नाना। नञ् अव्यय के अनुबन्ध का लोप होकर वृद्धि हो जाती है ॥६२७॥

वेः शालच्छङ्कटचौ ॥ ६२८ ॥ —अ० ५। २। २८॥

---

१. इत्यादि जिन जिन सूत्र वार्त्तिकों में अव्ययों से प्रत्यय विधान किये हैं, वहां वहां महाविभाषा अर्थात् (समर्थानां०) इस अधिकार सूत्र के विकल्प की प्रवृत्ति न होने से वाक्य नहीं रहता। अर्थात् नित्य प्रत्यय हो जाते हैं ॥

वि अव्यय प्रातिपदिक से शालच् और शङ्कटच् प्रत्यय हों। जैसे– विशालः; विशङ्कटो वा पुरुष[1] ॥६२८॥

सम्प्रोदश्च कटच् ॥ ६२९ ॥ —अ० ५। २। २९॥

यहां चकार ग्रहण से वि उपसर्ग की अनुवृत्ति आती है।

सम्, प्र, उद् और वि इन उपसर्ग शब्दों से कटच् प्रत्यय हो। जैसे—सङ्कटम्; प्रकटम्; उत्कटम्; विकटम् ॥६२९॥

वा०–कटच्प्रकरणेऽलाबूतिलोमाभङ्गाभ्यो रजस्युपसंख्यानम्[2] ॥ ६३० ॥

अलाबू तिल उमा और भङ्गा प्रातिपदिकों से रज अर्थ में कटच् प्रत्यय हो। जैसे—अलाबूनां रजोऽलाबूकटम्; तिलकटम्; उमाकटम्; भङ्गाकटम् ॥६३०॥

वा०–गोष्ठादयः स्थानादिषु पशुनामादिभ्य उपसंख्यानम् ॥ ६३१ ॥

---

१. विशाल आदि शब्द कि जिनका निर्वचन कहने में नहीं आता वे अव्युत्पन्न शब्द कहाते हैं। वस्तुतः ये शब्द अव्युत्पन्न ही हैं, क्योंकि प्रकृति और प्रत्ययों का भिन्न अर्थ कुछ विदित नहीं होता। फिर इनमें प्रत्यय विधान केवल स्वर आदि का बोध होने के लिये है॥

२. इन सूत्र वार्त्तिकों से कटच् आदि प्रत्ययों के विधान में दूसरा पक्ष यह भी है वि कट आदि शब्द रज आदि अर्थों के वाचक हैं, उनके साथ षष्ठीतत्पुरुष समास होकर ये शब्द बनते हैं। जैसे गोष्ठ नाम स्थान का है—गवां गोष्ठं गोगोष्ठम् इत्यादि। इन पक्ष में इन वार्त्तिकों का कुछ प्रयोजन नहीं है॥

स्थान आदि अर्थों में पशु आदि के विशेषनामवाची शब्दों से गोष्ठ आदि प्रत्यय हों। जैसे—गवां स्थानं गोगोष्ठम्; महिषीगोष्ठम्; अजागोष्ठम्; अविगोष्ठम् इत्यादि ॥६३१॥

वा०—संघाते कटच् ॥ ६३२ ॥

यहां पूर्व वार्त्तिक की अनुवृत्ति आती है।

संघात अर्थ में पशुओं के विशेष नामवाची प्रातिपदिकों से कटच् प्रत्यय हो। जैसे—अवीनां संघातोऽविकटम्; अजाकटम्; गोकटम् इत्यादि ॥६३२॥

वा०—विस्तारे पटच् ॥ ६३३ ॥

विस्तार अर्थ में पशुओं के विशेषनामवाची प्रातिपदिकों से पटच् प्रत्यय होवे। जैसे—गवां विस्तारो गोपटम्; उष्ट्रपटम्; वृकपटम् इत्यादि ॥६३३॥

वा०—द्वित्वे गोयुगच् ॥ ६३४ ॥

पशुओं के द्वित्व अर्थ में उक्त शब्दों से गोयुगच् प्रत्यय होवे। जैसे—ऊष्ट्राणां द्वित्वम् उष्ट्रगोयुगम्; हस्तिगोयुगम्; व्याघ्रगोयुगम्; इत्यादि ॥६३४॥

वा०—प्रकृत्यर्थस्य षट्त्वे षड्गवच् ॥ ६३५ ॥

उक्त प्रातिपदिकों से छः व्यक्तियों के बोध होने अर्थ में षड्गवच् प्रत्यय हो। जैसे—षट् हस्तिनो हस्तिषडगवम्; अश्वषड्गवम् इत्यादि ॥६३५॥

वा०—स्नेहे तैलच् ॥ ६३६ ॥

स्नेह अर्थात् घी तेल आदि अर्थों में सामान्य प्रातिपदिकों से तैलच् प्रत्यय हो। जैसे—एरण्डतैलम्; तिलतैलम्; सर्षपतैलम्; इङ्गुदीतैलम् इत्यादि ॥६३६॥

वा०—भवने क्षेत्रे इक्ष्वादिभ्यः शाकटशाकिनौ ॥६३७॥

उत्पत्ति का स्थान खेत वाच्य रहे, तो इक्षु आदि शब्दों से शाकट और शाकिन प्रत्यय हों। जैसे—इक्षूणां क्षेत्रमिक्षुशाकटम्; इक्षुशाकिनम्; यवशाकटम्; यवशाकिनम् इत्यादि ॥६३७॥

नते नासिकायाः संज्ञायां टीटञ्नाटज्भ्रटचः ॥६३८॥
—अ० ५। २। ३१॥

यहां पूर्व सूत्र से अव उपसर्ग की अनुवृत्ति आती है।

नासिका के टेढे होने अर्थ में संज्ञा अभिधेय रहे, तो अव शब्द से टीटच् नाटच् और भ्रटच् प्रत्यय हों। जैसे—नासिकाया नतम् अवटीटम्; अवनाटम्; अवभ्रटम्।

ऐसी नासिका से युक्त पुरुष के भी ये नाम पड़ जाते हैं। जैसे—अवटीटः; अवनाटः; अवभ्रटो वा पुरुषः इत्यादि ॥६३८॥

इनच्पिटच्चिकचि च ॥ ६३९ ॥ —अ० ५। २। ३३॥

यहां नि उपसर्ग और नासिका के नत की अनुवृत्ति आती है।

नि शब्द से नासिका के नम जाने अर्थ में इनच् और पिटच् प्रत्ययों के परे नि शब्द को यथासंख्य करके चिक और चि आदेश होवें। जैसे--चिकिनः; चिपिटः ॥६३९॥

वा०—ककारप्रत्ययो वक्तव्यश्चिक्च प्रकृत्यादेशः ॥६४०॥

नि शब्द को चिक् आदेश और उससे क प्रत्यय भी हो। जैसे—चिक्कः ॥६४०॥

वा०-क्लिन्नस्य चिल्पिल्चुल्लश्चास्य चक्षुषी ॥६४१॥

इसके नेत्र इस अर्थ में क्लिन्न शब्द को चिल् पिल् और चुल् आदेश और ल प्रत्यय होवे। जैसे—क्लिन्ने अस्य चक्षुषी चिल्लः; पिल्लः; चुल्लः; ॥६४१॥

उपाधिभ्यां त्यकन्नासन्नारूढयोः ॥ ६४२ ॥

—अ० ५।२।३४॥

यहां (नते नासिका०) इस सूत्र से संज्ञा की अनुवृत्ति चली आती है।

आसन्न और आरूढ़ अर्थ में वर्त्तमान उप और अधि उपसर्गों से संज्ञाविषयक स्वार्थ में त्यकन् प्रत्यय हो। जैसे—पर्वतस्यासन्नमुपत्यका; पर्वतस्यारूढमधित्यका[1] ॥६४२॥

तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच् ॥ ६४३ ॥

—अ० ५।२।३६॥

सञ्जात समानाधिकरण प्रथमासमर्थ तारक आदि गणपठित शब्दों से षष्ठी के अर्थ में इतच् प्रत्यय होवे।

जैसे--तारकाः सञ्जाता अस्य तारकितं नभः; पुष्पितो वृक्षः; पण्डा सञ्जाता अस्य पण्डितः; तन्द्रा सञ्जाताऽस्य तन्द्रितः; मुद्रा सञ्जाताऽस्य मुद्रितं पुस्तकम् इत्यादि। तारकादि आकृतिगण समझना चाहिये ॥६४३॥

---

१. यहां प्रत्ययस्थ ककार से पूर्व इत्व प्राप्त है, सो इन शब्दों के संज्ञावाची होने से नहीं होता। अर्थात् ये शब्द इसी प्रकार के पर्वत के आसन्न आरूढ अर्थों में रूढ़ि हैं॥

प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः ॥६४४॥

—अ० ५ । २ । ३७ ॥

प्रमाण समानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में द्वयसच दघ्नच् और मात्रच् प्रत्यय हों ॥ ६४४ ॥

का०—प्रथमश्च द्वितीयश्च ऊर्ध्वमाने मतौ मम ॥६४५॥

द्वयसच् और दघ्नच् ये दोनों प्रत्यय ऊर्ध्वमान अर्थात् ऊंचाई के इतने अर्थ में होते हैं, और मात्रच् सामान्य इयत्ता में जानो।

यह कारिका सूत्र का शेष है। जैसे—ऊरू प्रमाणमस्य ऊरुद्वयसमुदकम्; ऊरुदघ्नमुदकम्; ऊरुमात्रम्; जानुद्वयसम्; जानुदघ्नम्; जानुमात्रम्; प्रस्थमात्रम् इत्यादि ॥ ६४५ ॥

वा०—प्रमाणे लः ॥६४६॥

प्रमाणवाची शब्दों से षष्ठी के अर्थ में हुए प्रत्यय का लुक् हो। जैसे—शमः प्रमाणमस्य शमः; दिष्टिः; वितस्तिः इत्यादि ॥ ६४६ ॥

वा०—द्विगोर्नित्यम् ॥६४७॥

द्विगुसंज्ञक प्रमाणवाची शब्दों से नित्य ही उत्पन्न प्रत्यय का लुक् हो। जैसे—द्वौ शमौ प्रमाणमस्य द्विशमः; त्रिशमः; द्विवितस्तिः इत्यादि।

इस वार्त्तिक में 'नित्य' ग्रहण इसलिये है कि—अगले वार्त्तिक में संशय अर्थ में मात्रच् कहा है, वहां भी द्विगु से लुक् ही हो जावे। जैसे—द्वे दिष्टी स्यातां वा न वा द्विदिष्टिः ॥ ६४७ ॥

वा०—प्रमाणपरिमाणाभ्यां संख्यायाश्चापि संशये मात्रच् ॥६४८॥

प्रमाणवाची परिमाणवाची और संख्यावाची प्रातिपदिकों से संशय अर्थ में मात्रच् प्रत्यय होवे। जैसे—प्रमाणवाची—शममात्रम्; दिष्टिमात्रम्। परिमाणवाची—प्रस्थमात्रम्। संख्यावाची—पञ्चमात्रा वृक्षाः; दशमात्रा गावः इत्यादि ॥ ६४८ ॥

वा०—वत्वन्तात्स्वार्थे द्वयसज्मात्रचौ बहुलम् ॥६४९॥

वतुप् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से द्वयसच् और मात्रच् प्रत्यय स्वार्थ में बहुल करके हों। जैसे—तावदेव तावद्द्वयसम्; तावन्मात्रम्; एतावद्द्वयसम्; एतावन्मात्रम्; यावद्द्वयसम्; यावन्मात्रम् ॥ ६४९ ॥

यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप् ॥६५०॥

—अ० ५। २। ३९ ॥

प्रथमासमर्थ परिमाणसमानाधिकरण यत् तत् और एतत् सर्वनामवाची प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में वतुप् प्रत्यय हो। जैसे—यत्परिमाणमस्य यावान्; तावान्; एतावान्।

प्रमाण ग्रहण की अनुवृत्ति पूर्व से चली आती, फिर परिमाणग्रहण से इन दोनों का भेद विदित होता है ॥ ६५० ॥

वा०—वतुप्प्रकरणे युष्मदस्मद्भ्यां छन्दसि सादृश्य उपसंख्यानम् ॥६५१॥

युष्मद् अस्मद् शब्दों से सादृश्य अर्थ में वैदिकप्रयोगों में वतुप् प्रत्यय हो। जैसे—त्वत्सदृशस्त्वावान्; मत्सदृशो मावान्; त्वावतः पुरुवसो यज्ञं विप्रस्य मावतः ॥ ६५१ ॥

किमिदम्भ्यां वो घः ।।६५२।। --अ० ५ । २ । ४० ।।

परिमाणसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ किम् और इदम् शब्दों से वतुप् प्रत्यय और वतुप् के वकार को घकारादेश होवे । जैसे—किम्परिमाणमस्य कियान्; इदम्परिमाणमस्य इयान् ।। ६५२ ।।

संख्याया अवयवे तयप् ।।६५३।। —अ० ५ । २ । ४२ ।।

अवयवों का अवयवी के साथ सम्बन्ध होने से प्रत्ययार्थ अवयवी समझा जाता है ।

अवयवसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ संख्यावाची प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में तयप् प्रत्यय हो । जैसे—पञ्च अवयवा अस्य पञ्चतयम्; दशतयम्; चतुष्टयम्; चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिः इत्यादि ।। ६५३ ।।

द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा ।।६५४।।

—अ० ५ । २ । ४३ ।।

पूर्व सूत्र से विहित जो द्वि त्रि शब्दों से तयप् प्रत्यय, उसके स्थान में अयच आदेश विकल्प करके होवे । जैसे—द्वाववयवावस्य द्वयम्; द्वितयम्; त्रयम्; त्रितयम् ।

इस अयच् आदेश को जो प्रत्ययान्तर मानें, तो तयप् ग्रहण न करना पड़े । परन्तु स्थानिवद्भाव मान के जो त्रयी शब्द में ङीप् और जस् विभक्ति में सर्वनामसंज्ञा का विकल्प होता है, सो नहीं पावे ।। ६५४ ।।

उभादुदात्तो नित्यम् ।।६५५।। —अ० ५ । २ । ४४ ।।

यहां पूर्व सूत्र की अनुवृत्ति आती है ।

उभ शब्द से परे जो तयप् उसके स्थान में अयच् आदेश उदात्त नित्य ही होवे। जैसे—उभाववयवावस्य उभयो मणिः; उभये देवमनुष्याः।

यहां उदात्त के कहने से आद्युदात्त होता है, क्योंकि अन्तोदात्त तो चित् होने से हो ही जाता ॥ ६५५ ॥

तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताड्डः ॥ ६५६ ॥

—अ० ५ । २ । ४५ ॥

अधिक समानाधिकरण प्रथमासमर्थ दश जिनके अन्त में हो, ऐसे संख्यावाची प्रातिपदिक से ड प्रत्यय हो। जैसे—एकादश अधिका अस्मिन् शते एकादशं शतम्; एकादशं सहस्रम्; द्वादशं शतम्; द्वादशं सहस्रम् इत्यादि।

यहां 'दशान्त' ग्रहण इसलिये है कि—पञ्चाधिका अस्मिन् शते, यहां प्रत्यय न हो। और 'अन्त' ग्रहण इसलिये है कि—दशाधिका अस्मिन् शते, यहां भी ड प्रत्यय न हो।

'इति' शब्द इसलिये पढ़ा है कि—जहां प्रत्ययार्थ की विवक्षा हो वहीं प्रत्यय हो, और—एकादश माषा अधिका अस्मिन् कार्षापणशते, यहां तथा—एकादशाधिका अस्यां त्रिंशतीति, यहां भी विवक्षा के न होने से प्रत्यय नहीं होता ॥ ६५६ ॥

तस्य पूरणे डट् ॥ ६५७ ॥ —अ० ५ । २ । ४८ ॥

षष्ठीसमर्थ संख्यावाची प्रातिपदिक से पूरण अर्थ में डट् प्रत्यय हो। जैसे—एकादशानां पूरण एकादशः; द्वादशः; त्रयोदशः इत्यादि।

डट् प्रत्यय के डित् होने से टिलोप हो जाता है। दश व्यक्तियों में एक व्यक्ति ग्यारह को पूरण करता है ॥ ६५७ ॥

नान्तादसङ्ख्यादेर्मट् ॥ ६५८ ॥ —अ० ५ । २ । ४९ ॥

यहां पूर्व से डट् की अनुवृत्ति आती है ।

संख्या जिनके आदि में न हो ऐसे नकारान्त संख्यावाची प्रातिपदिक से विहित पूरण अर्थ में जो डट् उसको मट् का आगम होवे । जैसे—पञ्चानां पूरणः पञ्चमः; सप्तमः; अष्टमः; नवमः इत्यादि ।

यहां 'नान्त' ग्रहण इसलिये है कि—विंशतेः पूरणो विंशः, यहाँ न हो । और आदि में 'संख्या का निषेध' इसलिये है कि—एकादशानां पूरण एकादशः, यहां भी मट् का आगम न हो ॥ ६५८ ॥

षट्कतिकतिपयचतुरान्थुक् ॥ ६५९ ॥

—अ० ५ । २ । ५१ ॥

डट् की अनुवृत्ति यहां भी आती है ।

षट् कति कतिपय और चतुर् शब्दों को डट् प्रत्यय के परे थुक् का आगम हो । जैसे—षण्णां पूरणः षष्ठः; कतिथः; कतिपयथः; चतुर्थः ॥ ६५९ ॥

वा०—चतुरश्छयतावाद्यक्षरलोपश्च ॥ ६६० ॥

षष्ठीसमर्थ चतुर् प्रातिपदिक से डट् के अपवाद छ और यत् प्रत्यय हों, और चतुर् शब्द के चकार का लोप हो । जैसे—चतुर्णां पूरणः तुरीयः; तुर्य्यः ॥ ६६० ॥

द्वेस्तीयः ॥ ६६१ ॥ —अ० ५ । २ । ५४ ॥

यह भी डट् का अपवाद है ।

द्वि शब्द से पूरण अर्थ में तीय प्रत्यय हो। जैसे—द्वयोः पूरणो द्वितीयः ॥६६१॥

त्रेः सम्प्रसारणञ्च ॥६६२॥ —अ० ५। २। ५५॥

त्रि शब्द से तीय प्रत्यय और उसके परे उसको सम्प्रसारण भी हो जावे। जैसे—त्रयाणां पूरणस्तृतीयः[1] ॥६६२॥

विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम् ॥६६३॥

—अ० ५। २। ५६॥

विंशति आदि प्रातिपदिकों से परे डट् प्रत्यय को तमट् का आगम विकल्प करके हो। जैसे—विंशतेः पूरणो विंशतितमः, विंशः; एकविंशतितमः, एकविंशः; त्रिंशत्तमः, त्रिंशः; एकत्रिंशत्तमः, एकत्रिंशः इत्यादि ॥६६३॥

नित्यं शतादिमासार्द्धमाससंवत्सराच्च ॥६६४॥

—अ० ५। २। ५७॥

पूरणार्थ में शत आदि मास अर्द्धमास और संवत्सर शब्दों से परे डट् प्रत्यय को तमट् का आगम नित्य ही होवे। जैसे—शतस्य पूरणः शततमः; सहस्रतमः; लक्षतमः इत्यादि; मासतमो दिवसः; अर्द्धमासतमः; संवत्सरतमः ॥६६४॥

---

१. यहां हल् से परे ऋकार सम्प्रसारण को दीर्घ इसलिये नहीं होता कि (हलः) इस सूत्र में अण् की अनुवृत्ति आती, और अण् पूर्व णकार से लिया जाता है॥

षष्टयादेश्चासंख्यादेः ॥६६५॥ —अ० ५ । २ । ५८ ॥

पूरणार्थ में संख्या जिनके आदि में न हो ऐसे जो षष्टि आदि शब्द हैं, उनसे परे डट् प्रत्यय को तमट् का आगम हो । जैसे—षष्टेः पूरणः षष्टितमः; सप्ततितमः; अशीतितमः; नवतितमः ।

यहां 'संख्यादि का निषेध' इसलिये है कि—एकषष्टः, एकषष्टितमः; एकसप्ततः, एकसप्ततितमः, यहां विंशत्यादि सूत्र से विकल्प हो जाता है ॥६६५॥

स एषां ग्रामणीः ॥६६६॥ —अ० ५ । २ । ७८ ॥

षष्ठ्यर्थ वाच्य रहे, तो ग्रामणी अर्थ में प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय हो । ग्रामणी मुख्य का नाम है । जैसे—देवदत्तो ग्रामणीरेषां देवदत्तकाः; यज्ञदत्तकाः ।

यहां 'ग्रामणी' ग्रहण इसलिये है कि—देवदत्तः शत्रुरेषाम्, इत्यादि में कन् प्रत्यय न हो ॥६६६॥

कालप्रयोजनाद्रोगे ॥ ६६७ ॥ —अ० ५ । २ । ८१ ॥

रोग अर्थ में सप्तमीसमर्थ कालवाची और प्रयोजन नाम कारणवाची तृतीयासमर्थ प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय हो । जैसे—[कालवाची] द्वितीयेऽह्नि भवो द्वितीयको ज्वरः; तृतीयको ज्वरः; चतुर्थकः । प्रयोजन से—विषपुष्पैर्जनितो विषपुष्पको ज्वरः; काशपुष्पको ज्वरः; उष्ण कार्य्यमस्य उष्णकः; शीतको ज्वरः इत्यादि ॥६६७॥

श्रोत्रियँश्छन्दोऽधीते ॥६६८॥ —अ० ५ । १ । ८४ ॥

यश्छन्दोऽधीते स श्रोत्रियः, यहां छन्द के पढ़ने अर्थ में छन्दस् शब्द को श्रोत्रभाव और घन् प्रत्यय निपातन किया है ॥६६८॥

श्राद्धमनेन भुक्तमिनिठनौ ॥६६९॥

—अ० ५ । २ । ८५ ॥

'अनेन भुक्तं' इस अर्थ में प्रथमासमर्थ श्राद्ध प्रातिपदिक से इनि और ठन् प्रत्यय हों। जैसे—श्राद्धं भुक्तमनेन श्राद्धी; श्राद्धिकः ॥६६९॥

साक्षाद्द्रष्टरि संज्ञायाम् ॥६७०॥ —अ० ५ । २ । ९१ ॥

द्रष्टा की संज्ञा अर्थ में साक्षात् अव्यय से इनि प्रत्यय हो। जैसे—साक्षाद्द्रष्टा साक्षी ॥६७०॥

इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमिन्द्रदृष्टमिन्द्रसृष्टमिन्द्रजुष्टमिन्द्रदत्तमिति वा ॥६७१॥ —अ० ५ । २ । ९३ ॥

यहां इन्द्र जीवात्मा और लिङ्ग चिह्न का नाम है।

लिङ्गादि अर्थों में इन्द्र शब्द से घच् प्रत्यय निपातन करने से इन्द्रिय शब्द सिद्ध होता है। जैसे—इन्द्रस्य लिङ्गमिन्द्रियम्। इन्द्र नाम जीवात्मा का लिङ्ग जो प्रकाशक चिह्न हो, उसको इन्द्रिय कहते हैं। इन्द्रेण दृष्टम् इन्द्रियम्। इन्द्रेण सृष्टम् इन्द्रियम्, यहां ईश्वर का ग्रहण है। इन्द्रेण जुष्टम् इन्द्रियम्, यहां जीव का ग्रहण है। इन्द्रेण दत्तम् इन्द्रियम्, और यहां ईश्वर का ग्रहण होता है ॥६७१॥

तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् ।।६७२।।

—अ० । ५ । २ । ९४ ।।

अस्ति और प्रथमासमानाधिकरण ङ्याप् प्रातिपदिकों से षष्ठी और सप्तमी के अर्थ में मतुप् प्रत्यय हो । जैसे—गावोऽस्य सन्ति गोमान् देवदत्तः; वृक्षाः सन्त्यस्मिन् स वृक्षवान् पर्वतः; यवा अस्य सन्ति यवमान्, प्लक्षवान् इत्यादि ।।६७२।।

मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः ।।६७३।।

—अ० ८ । २ । ९ ।।

मकारान्त मकारोपध अपर्णान्त और अवर्णोपध प्रातिपदिकों से परे मतुप् प्रत्यय के मकार को वकारादेश हो, परन्तु यवादि प्रातिपदिकों से परे न हो ।

जैसे—मकारान्त—किंवान्; शंवान् । मकारोपध—शमीवान्; दाडिमीवान्; लक्ष्मीवान् । अवर्णान्त—वृक्षवान्; प्लक्षवान्; घटवान्; खट्वावान्; मालावान् । अवर्णोपध—पयस्वान्; यशस्वान्; भास्वान् ।

यहां 'मकारान्त आदि' का ग्रहण इसलिये है कि—अग्निमान्; वायुमान्; बुद्धिमान्, यहां वकार न हो । और 'अयवादि' इसलिये कहा है कि—यवमान्; दल्मिमान्; ऊर्म्मिमान् इत्यादि, यहां भी मकार को वकार आदेश न होवे ।।६७३।।

झयः ।।६७४।। —अ० ८ । २ । १० ।।

झय् प्रत्याहारान्त प्रातिपदिक से परे मतुप् के मकार को वकारादेश हो । जैसे—अग्निचित्वान् ग्रामः; उदश्वित्वान् घोषः; विद्युत्वान् बलाहकः; मरुत्वानिन्द्रः; वृषद्वान् देशः इत्यादि ।।६७४।।

संज्ञायाम् ॥६७५॥ —अ० ८ । २ । ११ ॥

संज्ञाविषय में मतुप् के मकार को वकारादेश हो। जैसे—अहीवती; कपीवती; ऋषीवती; मुनीवती वा नगरी इत्यादि ॥६७५॥

का०—भूमनिन्दाप्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने ।
सम्बन्धेऽस्तिविवक्षायां भवन्ति मतुबादयः॥६७६॥

बहुत्व निन्दा प्रशंसा नित्ययोग अतिशय सम्बन्ध और अस्ति=होने की विवक्षा अर्थों में मतुप्, और इस प्रकरण में जितने प्रत्यय हैं, वे सब होते हैं। यह कारिका इसी सूत्र पर महाभाष्य में है।

जैसे—भूम अर्थ में—गोमान्; यवमान् इत्यादि । निन्दा में—कुष्ठी; ककुदावर्त्तिनी इत्यादि । प्रशंसा में—रूपवती इत्यादि । नित्ययोग अर्थ में—क्षीरिणो वृक्षाः; कण्टकिनो वृक्षाः इत्यादि । अतिशय में—उदरिणी कन्या इत्यादि । सम्बन्ध में—दण्डी; छत्री इत्यादि । होने की विवक्षा में—अस्तिमान् ॥६७६॥

वा०—गुणवचनेभ्यो मतुपो लुक् ॥६७७॥

गुणवाची प्रातिपदिकों से परे मतुप् प्रत्यय का लुक् हो। जैसे—शुक्लो गुणोस्याऽस्तीति शुक्लः पटः; कृष्णः; श्वेतः इत्यादि ॥६७७॥

रसादिभ्यश्च ॥६७८॥ —अ० ५ । २ । ९५ ॥

रस आदि प्रातिपदिकों से षष्ठी सप्तमी के अर्थ में मतुप् प्रत्यय हो। जैसे—रसोऽस्यास्तीति रसवान्; रूपवान्; गन्धवान्; शब्दवान् इत्यादि ।

यहां रसादि शब्दों से प्रत्ययविधान इसलिए किया है कि इनके गुणवाची होने से मतुप् का लुक् पूर्व वार्त्तिक से पाया था, सो न हो ।।६७८।।

प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम् ।।६७९।।

—अ० ५ । २ । ९६ ।।

मत्वर्थ में प्राणिस्थवाची आकारान्त शब्द से लच् प्रत्यय विकल्प करके हो । जैसे—चूडालः, चूडावान्; कर्णिकालः, कर्णिकावान्; जिह्वालः, जिह्वावान्; जंघालः, जंघावान् ।

यहां 'प्रणिस्थ' ग्रहण इसलिए है कि—शिखावान् प्रदीपः, यहां न हो । और 'आकारान्त' ग्रहण इसलिये है कि—हस्तवान्; पादवान् इत्यादि में भी लच् प्रत्यय न हो ।।६७९।।

वा०--प्राण्यङ्गादिति वक्तव्यम् ।।६८०।।

प्राणिस्थ आकारान्त शब्दों से जो लच् प्रत्यय कहा है, वह प्राणियों के अङ्गवाचियों से हो । अर्थात् चिकीर्षास्यास्तीति, जिहीर्षास्यास्ति चिकीर्षावान्; जिहीर्षावान् इत्यादि में लच् प्रत्यय न हो ।।६८०।।

सिध्मादिभ्यश्च ।।६८१।। —अ० ५ । २ । ९७ ।।

मत्वर्थ में सिध्म आदि प्रातिपदिकों से लच् प्रत्यय विकल्प करके हो, पक्ष में मतुप् हो । जैसे—सिध्मोऽस्यास्तीति सिध्मलः, सिध्मवान्; गडुलः, गडुमान्; मणिलः, मणिमान् इत्यादि ।।६८१।।

लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः ।।६८२।।

—अ० ५ । २ । १०० ।।

मत्वर्थ में लोमादि पामादि और पिच्छादि गणपठित प्रातिपदिकों से श न और इलच् प्रत्यय यथासंख्य करके हों, तथा मतुप् भी होवे ।

जैसे—लोमान्यस्य सन्ति लोमशः, लोमवान्; पामनः, पामवान्; पिच्छिलः, पिच्छवान्; उरसिलः, उरस्वान् इत्यादि ॥६८२॥

प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्यो णः ॥६८३॥ —अ० ५ । २ । १०१ ॥

मत्वर्थ में प्रज्ञा श्रद्धा और अर्चा प्रातिपदिकों से ण प्रत्यय हो । जैसे—प्रज्ञाऽस्यास्ति प्राज्ञः, प्रज्ञावान्; श्राद्धः, श्रद्धावान्; आर्चः, अर्चावान्[1] ॥६८३॥

तपःसहस्राभ्यां विनीनी ॥६८४॥

—अ० ५ । २ । १०२ ॥

मत्वर्थ में तपस् और सहस्र प्रातिपदिक से विनी और इनि प्रत्यय हों । जैसे—तपोऽस्मिन्नस्तीति तपस्वी; सहस्री ॥६८४॥

अण् च ॥६८५॥ —अ० ५ । २ । १०३ ॥

मत्वर्थ में तपस् और सहस्र प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय भी हो । जैसे—तापसः; साहस्रः ॥६८५॥

दन्त उन्नत उरच् ॥ ६८६ ॥ —अ० ५ । २ । १०६ ॥

उन्नतसमानाधिकरण दन्त शब्द से मतुप् के अर्थ में उरच् प्रत्यय हो । जैसे—दन्ता उन्नता अस्य सन्ति स दन्तुरः ।

---

१. यहां प्रज्ञा आदि शब्दों से ण और मतुप् प्रत्यय प्रशंसा अर्थ में समझना चाहिये । और यहां सामान्य अर्थ में अर्थात् बुद्धि जिसमें हो ऐसा समझने से साधारण प्राणियों के नाम प्राज्ञ और प्रज्ञावान् होंगे, इसलिए उसका विशेष अर्थ समझो ॥

यहां 'उन्नत' विशेषण इसलिये है कि—दन्तवान्, यहां निन्दा आदि अर्थों में उरच् प्रत्यय न होवे ॥६८६॥

ऊषसुषिमुष्कमधो रः ॥ ६८७ ॥ —अ० ५ । २ । १०७ ॥

ऊष सुषि मुष्क और मधु प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में र प्रत्यय होवे । जैसे—ऊषमस्मिन्नस्ति ऊषरा भूमिः; सुषिरं काष्ठम्; मुष्करः पशुः; मधुरो गुडः ॥६८७॥

वा०—रप्रकरणे खमुखकुञ्जेभ्य उपसंख्यानम् ॥६८८॥

ख मुख और कुञ्ज शब्दों से भी मत्वर्थ में र प्रत्यय हो । जैसे—खमस्यास्तीति खरः; मुखमस्यास्तीति मुखरः; कुञ्जरः[1] ॥६८८॥

वा०—नगपांसुपाण्डुभ्यश्च ॥ ६८९ ॥

नग पांसु और पाण्डु शब्दों से भी मत्वर्थ में र प्रत्यय हो । जैसे—नगमस्मिन्नस्तीति नगरम्[2]; पांसुरम्; पाण्डुरम् ॥६८९॥

वा०—कच्छ्वा ह्रस्वत्वं च ॥ ६९० ॥

कच्छ्वा शब्द से र प्रत्यय और उसको ह्रस्वादेश भी हो । जैसे—कच्छ्वास्यामस्तीति कच्छुरा भूमिः ॥६९०॥

---

१. जिसके कण्ठ में ख नाम विशेष अवकाश हो उसको खर । मुख का काम निरन्तर उच्चारण करना जिसका हो उसको मुखर । और कुञ्जर बड़ी ठोड़ी होने से हाथी को कहते हैं ॥

२. नग अर्थात् वृक्ष और पर्वत जिसमें हों उसको नगर कहते हैं ॥

केशाद्वोऽन्यतरस्याम् ॥ ६९१ ॥—अ० ५। २। १०९॥

इस सूत्र में अप्राप्तविभाषा इसलिये समझना चाहिये कि केश शब्द से व प्रत्यय किसी से प्राप्त नहीं है। केश प्रातिपदिक से व प्रत्यय विकल्प करके हो।

यहां महाविभाषा अर्थात् (समर्थानां०) इस सूत्र से विकल्प की अनुवृत्ति चली आती है, और दूसरे इस विकल्प के होने से चार प्रयोग होते हैं। जैसे—प्रशस्ताः केशा अस्य सन्तीति केशवः, केशी, केशिकः, केशवान्। केश शब्द ज्योति अर्थात् प्रकाश गुण का भी नाम है ॥६९१॥

वा०—वप्रकरणे मणिहिरण्याभ्यामुपसंख्यानम् ॥ ६९२ ॥

मणि और हिरण्य प्रातिपदिक से भी व प्रत्यय हो। जैसे—मणिरस्मिन्नस्तीति मणिवः सर्पः; हिरण्यवः[1] ॥६९२॥

वा०—छन्दसीवनिपौ च ॥ ६९३ ॥

वैदिक प्रयोगों में सामान्य प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में ई और वनिप् प्रत्यय हो।

जैसे—रथीरभून्मुद्गलानी गविष्टौ, यहां रथीः शब्द में ई प्रत्यय हुआ है; सुमङ्गलीरियं वधूः इत्यादि। ऋतावानम्; मघवानमीमहे, यहां ऋत और मघ शब्द से वनिप होता है ॥६९३॥

---

१. मणिव किसी विशेष सर्प की और हिरण्यव धन विशेष की संज्ञा है ॥

वा०--मेधारथाभ्यामिरन्निरचौ वक्तव्यौ ॥ ६९४ ॥

मेधा और रथ शब्दों से मत्वर्थ में इरन् और इरच् प्रत्यय हों। जैसे—मेधिरः; रथिरः। ये भी मतुप् के बाधक हैं ॥६९४॥

वा०--अपर आह-वप्रकरणेऽन्येभ्योपि दृश्यत इति वक्तव्यम् ॥ ६९५ ॥

इस विषय में बहुतेरे ऋषि लोगों का ऐसा मत है कि अविहित सामान्य प्रातिपदिकों से व प्रत्यय देखने में आता है। जैसे—विम्बावम्; कुररावम्; इष्टकावम् इत्यादि।

प्रयोजन यह है कि—पूर्व वार्त्तिक में जो मणि और हिरण्य शब्दों से व प्रत्यय कहा है, उसका भी इस पक्ष में कुछ प्रयोजन नहीं है ॥६९५॥

रजःकृष्यासुतिपरिषदो वलच् ॥ ६९६ ॥

—अ० ५। २। ११२॥

रजस् कृषि आसुति और परिषत् प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में वलच् प्रत्यय हो। जैसे—रजोऽस्याः प्रवर्त्तत इति रजस्वला स्त्री; कृषीवलो ग्रामीणः; आसुतिवलः शौण्डिकः; परिषद्वलो राजा इत्यादि ॥६९६॥

वा०--वलच्प्रकरणेऽन्येभ्योऽपि दृश्यते ॥ ६९७ ॥

विहितों से पृथक् प्रातिपदिकों से भी वलच् प्रत्यय देखने में आता है। जैसे—भ्राताऽस्यास्तीति भ्रातृवलः; पुत्रवलः; उत्सङ्गवलः इत्यादि ॥६९७॥

अत इनिठनौ ।।६९८।। —अ० ५ । २ । ११५ ।।

मत्वर्थ में अकारान्त प्रातिपदिक से इनि और ठन् प्रत्यय हों। जैसे—दण्डी, दण्डिकः; छत्री, छत्रिकः।

यहां विकल्प की अनुवृत्ति आने से पक्ष में मतुप् प्रत्यय भी होता है। जैसे—दण्डवान्, दण्डिकः; छत्रवान्, छत्रिकः इत्यादि।

यहां 'तपरकरण' इसलिये है कि—खट्वावान्, यहां इनि ठन् न हों ।। ६९८ ।।

का०—एकाक्षरात्कृतो जातेः सप्तम्यां च न तौ स्मृतौ ।।६९९।।

एकाक्षर शब्द कृदन्त जातिवाची और सप्तमी के अर्थ में इनि और ठन् प्रत्यय न हों। सूत्र से जो प्राप्ति है; उसका विशेष विषय में निषेध किया है।

जैसे—एकाक्षर से—स्ववान्; खवान् इत्यादि। कृदन्त से—कारकवान्; हारकवान्। जातिवाचियों से—वृक्षवान्; प्लक्षवान्; व्याघ्रवान्; सिंहवान् इत्यादि। सप्तम्यर्थ में—दण्डा अस्यां शालायां सन्तीति दण्डवती शाला इत्यादि ।। ६९९ ।।

व्रीह्यादिभ्यश्च ।।७००।। —अ० ५ । २ । ११६ ।।

व्रीहि आदि गणपठित प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में इनि और ठन् प्रत्यय हों। जैसे—व्रीही, व्रीहिकः, व्रीहिमान्; मायी, मायिकः, मायावान् इत्यादि ।। ७०० ।।

का०—शिखादिभ्य इनिर्वाच्य इकन्यवखदादिषु ।।७०१।।

पूर्व सूत्र में व्रीह्यादि शब्दों में शिखादिगण हैं, उनसे इनि, और यवखदादि प्रातिपदिकों से इकन् (ठन्) कहना चाहिये।

प्रयोजन यह है कि सब व्रीह्यादिकों से दोनों प्रत्यय प्राप्त हैं सो न हों, किन्तु शिखादिकों से इनि ही हो, ठन् न हो, और यवखदादिकों से ठन् ही हो, इनि नहीं, यह नियम समझना चाहिये। जैसे—शिखी, मेखली इत्यादि। यवखदिक: इत्यादि ॥ ७०१ ॥

अस्मायामेधास्रजो विनि ॥७०२॥

—अ० ५। २। १२१ ॥

असन्त माया मेधा और स्रज् प्रातिपदिकों से मतुप् के अर्थ में विनि प्रत्यय हो, और मतुप् तो सर्वत्र होता ही है। और माया शब्द व्रीह्यादिगण में पढ़ा है, उससे इनि ठन् भी होते हैं। असन्तों से—पयस्वी; यशस्वी इत्यादि; मायावी, मायी, मायिक:, मायावान्; मेधावी, मेधावान्; स्रग्वी, स्रग्वान् ॥ ७०२ ॥

बहुलं छन्दसि ॥७०३॥ —अ० ५। २। १२२ ॥

वैदिकप्रयोगविषय में सामान्य प्रातिपदिकों से मत्वर्थविषयक विनि प्रत्यय बहुल करके हो। जैसे—अग्ने तेजस्विन्, यहां हो गया। और सूर्य्यो वर्चस्वान्, यहां नहीं भी हुआ इत्यादि। बहुल से अनेक प्रयोजन समझना चाहिये ॥ ७०३ ॥

वा०—छन्दोविन्प्रकरणेऽष्ट्रामेखलाद्वयोभयरुजाहृदयानां दीर्घश्च ॥७०४॥

अष्ट्रा मेखला द्वय उभय रुजा और हृदय शब्दों से विनि प्रत्यय और इनको दीर्घादेश भी होवे। जैसे—अष्ट्रावी; मेखलावी; द्वयावी; उभयावी; [रुजावी;] हृदयावी ॥ ७०४ ॥

वा०--मर्मणश्च ॥७०५॥

मर्मन् शब्द से भी विनि प्रत्यय और उसको दीर्घादेश हो। जैसे—मर्मावी ॥ ७०५ ॥

वा०—सर्वत्रामयस्योपसङ्ख्यानम् ॥७०६॥

पूर्व के तीनों वार्त्तिकों से वेद में प्रत्ययविधान समझना चाहिये, इसीलिये इस वार्त्तिक में सर्वत्र शब्द पढ़ा है।

सर्वत्र—लौकिक वैदिक सब प्रयोगों में—आमय शब्द से विनि प्रत्यय और दीर्घादेश भी होवे। जैसे—आमयावी ॥७०६॥

वा०—शृङ्गवृन्दाभ्यामारकन् ॥७०७॥

पूर्व वार्त्तिक से अगले सब वार्त्तिकों में सर्वत्र शब्द की अनुवृत्ति समझनी चाहिये।

शृङ्ग और वृन्द प्रातिपदिक से मत्वर्थ में आरकन् प्रत्यय हो। जैसे—शृङ्गाण्यस्य सन्ति शृङ्गारकः; वृन्दारकः ॥ ७०७ ॥

वा०--फलबर्हाभ्यामिनच् ॥७०८॥

फल और बर्ह शब्दों से इनच् हो। जैसे—फलान्यस्मिन्सन्ति फलिनः; बर्हिणः ॥ ७०८ ॥

वा०--हृदयाच्चालुरन्यतरस्याम् ॥७०९॥

हृदय शब्द से चालु प्रत्यय विकल्प करके हो, और पक्ष में इनि ठन् तथा मतुप् भी हो जावें। जैसे—हृदयालुः, हृदयी, हृदयिकः, हृदयवान् ॥ ७०९ ॥

वा०—शीतोष्णतृप्रेभ्यस्तन्न सहत इति चालुर्वक्तव्यः ॥७१०॥

शीत उष्ण और तृप्त प्रातिपदिकों से प्रकृत्यर्थ के न सह सकने अर्थ में चालु प्रत्यय हो। जैसे—शीतं न सहते स शीतालुः; उष्णालुः; तृप्रालुः ॥ ७१० ॥

वा०—हिमाच्चेलुः ॥७११॥

हिम शब्द से उसके न सहने अर्थ में चेलु प्रत्यय हो। जैसे—हिमं न सहते स हिमेलुः ॥ ७११ ॥

वा०—बलाच्चोलः ॥७१२॥

बल शब्द से उसके न सहने अर्थ में ऊल प्रत्यय हो। जैसे—बलं न सहत इति बलूलः ॥ ७१२ ॥

वा०—वातात्समूहे च ॥७१३॥

वात शब्द से उसके न सहने और समूह अर्थ में ऊल प्रत्यय हो। जैसे—वातानां समूहो वातं न सहते वा स वातूलः ॥७१३॥

वा०—पर्वमरुद्भ्यां तप् ॥७१४॥

पर्व और मरुत् प्रातिपदिक से मत्वर्थ में तप् प्रत्यय हो—जैसे—पर्वमस्मिन्नस्ति स पर्वतः; मरुत्तः।

और यह मरुत्त शब्द 'मरुतों ने दिया' ऐसे भी अर्थ में कृदन्त प्रत्यय होने से बन जाता है ॥ ७१४ ॥

वाचो ग्मिनिः ॥७१५॥ —अ० ५। २। १२४॥

वाक् प्रातिपदिक से मत्वर्थ में ग्मिनि प्रत्यय हो। जैसे—प्रशस्ता वागस्य स वाग्मी, वाग्मिनौ, वाग्मिनः ॥ ७१५ ॥

आलजाटचौ बहुभाषिणि ।।७१६।।

—अ० ५ । २ । १२५ ।।

यहां पूर्व सूत्र से वाक् शब्द की अनुवृत्ति आती है ।

बहुत बोलने वाले के अर्थ में वाक् प्रातिपदिक से आलच् और आटच् प्रत्यय हों। जैसे—बहु भाषत इति वाचालः; **वाचाटः** । यह ग्मिनी प्रत्यय का अपवाद है ।

और यह भी समझना चाहिये कि जो विद्या के अनुकूल विचारपूर्वक बहुत बोलता है, उसको वाचाल और वाचाट नहीं कहते हैं, किन्तु जो अंड बंड बोले । यह बात महाभाष्य में है ।। ७१६ ।।

स्वामिन्नैश्वर्य्ये ।।७१७।। —अ० ५ । २ । १२६ ।।

यहां ऐश्वर्य्यवाची स्व शब्द से मत्वर्थ में आमिन् प्रत्यय करके स्वामिन् शब्द निपातन किया है । जैसे—स्वमैश्वर्य्यमस्यास्तीति स्वामी, स्वामिनौ, स्वामिनः ।

ऐश्वर्य्य अर्थ इसलिये समझना चाहिये कि—स्ववान्, यहां आमिन् न हो ।। ७१७ ।।

वातातीसाराभ्यां कुक् च ।।७१८।।

—अ० ५ । २ । १२९ ।।

वात और अतीसार प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में इनि प्रत्यय और कुक् का आगम भी हो । जैसे—वातकी; अतीसारकी ।

यहां रोग अर्थ में प्रत्यय होना इष्ट है, इससे वातवती गुहा, यहां इनि और कुक् नहीं होते ।। ७१८ ।।

वा०—पिशाचाच्च ॥७१६॥

पिशाच शब्द से भी इनि और उसको कुक् का आगम होवे। जैसे—पिशाचकी वैश्रवणः ॥ ७१९ ॥

वयसि पूरणात् ॥७२०॥ —अ० ५ । २ । १३० ॥

वयस् नाम अवस्था अर्थ में पूरण प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से इनि प्रत्यय हो। जैसे—पञ्चमोऽस्यास्ति मासः संवत्सरो वा पञ्चमी उष्ट्रः; नवमी; दशमी इत्यादि।

यहां 'अवस्था' ग्रहण इसलिये किया है कि—पञ्चमवान् ग्रामरागः, यहां इनि न हुआ ॥ ७२० ॥

मुखादिभ्यश्च ॥७२१॥ —अ० ५ । २ । १३१ ॥

सुख आदि प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में इनि प्रत्यय हो। जैसे—सुखमस्यास्ति सुखी, दुःखी इत्यादि ॥ ७२१ ॥

धर्म्मशीलवर्णान्ताच्च ॥७२२॥ —अ० ५ । २ । १३२ ॥

धर्म्म शील और वर्ण ये शब्द जिनके अन्त में हों, उन प्रातिपदिकों से इनि प्रत्यय हो। जैसे—ब्राह्मणस्य धर्म्मः ब्राह्मणधर्म्मः सोऽस्यास्तीति ब्राह्मणधर्म्मी; ब्राह्मणशीली; ब्राह्मणवर्णी इत्यादि ॥ ७२२ ॥

हस्ताज्जातौ ॥७२३॥ —अ० ५ । २ । १३३ ॥

हस्त शब्द से जाति अर्थ में इनि प्रत्यय हो। जैसे—हस्ती, हस्तिनौ, हस्तिनः।

यहां 'जाति' इसलिये है कि—हस्तवान् पुरुषः, यहां इनि न हो ॥ ७२३ ॥

पुष्करादिभ्यो देशे ।।७२४।। —अ० ५ । २ । १३५ ।।

देश अर्थ में पुष्कर आदि शब्दों से इनि प्रत्यय हो । जैसे—पुष्करी देशः; पुष्करिणी पद्मिनी ।

यहां 'देश' ग्रहण इसलिये है कि—पुष्करवान् तडागः[1], यहां इनि प्रत्यय न हो ।। ७२४ ।।

वा०—इनिप्रकरणे बलाद्बाहूरुपूर्वपदादुपसंख्यानम् ।।७२५।।

बाहु और ऊरु जिसके पूर्व हों, ऐसे बल प्रातिपदिक से इनि प्रत्यय हो । जैसे—बाहुबलमस्यास्ति स बाहुबली; ऊरुबली ।। ७२५ ।।

वा०—सर्वादेश्च ।।७२६।।

सर्व शब्द जिसके आदि में हो, ऐसे प्रातिपदिक से इनि प्रत्यय हो ।

जैसे—**सर्वधनमस्यास्ति स सर्वधनी; सर्वबीजी; सर्वकेशी नटः** इत्यादि ।। ७२६ ।।

वा०—अर्थाच्चासंनिहिते ।।७२७।।

जिनके निकट पदार्थ न हों, और उनकी चाहना हो, ऐसे अर्थ में अर्थ शब्द से इनि प्रत्यय हो । जैसे—अर्थमभीप्सति अर्थी ।

---

१. यहां (वातातीसाराभ्यां०) इस सूत्र से लेकर जो इनि प्रत्यय विधान किया है, सो (अत इनिठनौ) इस लिखित सूत्र से इनि होजाता, फिर विधान नियमार्थ है । अर्थात् उन उन प्रातिपदिकों और उन उन विशेष अर्थों में इनि ही हो ठन् न हो ।।

यहां 'असन्निहित' ग्रहण इसलिये है कि—अर्थवान्, यहां इनि प्रत्यय न हो ।। ७२७ ।।

वा०—तदन्ताच्च ।।७२८।।

अर्थ शब्द जिनके अन्त में हो, उनसे भी इनि प्रत्यय हो। जैसे—धान्यार्थी; हिरण्यार्थी इत्यादि।

इन सब वार्त्तिकों में भी यही नियम समझना चाहिये कि इन विशेष अर्थों में और शब्दों से इनि ही हो, ठन् न हो ।।७२८।।

बलादिभ्यो मतुबन्यतरस्याम् ।।७२९।।

—अ० ५ । २ । १३६ ।।

बलादि प्रातिपदिकों से मतुप् प्रत्यय विकल्प करके हो, पक्ष में इनि समझो। जैसे—बलमस्यास्तीति बलवान्, बली; उत्साहवान् उत्साही; उद्भाववान्, उद्भावी इत्यादि ।। ७२९ ।।

संज्ञायां मन्माभ्याम् ।।७३०।। —अ० ५ । २ । १३७ ।।

मत्वर्थ में मन्नंत और मान्त प्रातिपदिकों से संज्ञाविषय में इनि प्रत्यय हो। जैसे—प्रथिमिनी; दामिनी; होमिनी; सोमिनी।

यहां 'संज्ञा' ग्रहण इसलिये है कि—सोमवान्; तोमवान् इत्यादि में इनि न हो ।। ७३० ।।

कंशंभ्यां बभयुस्तितुतयसः ।।७३१।।

—अ० ५ । २ । १३८ ।।

जल और सुख के वाची कम् और शम् मकारान्त प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में ब, भ, युस्, ति, तु, त और यस् प्रत्यय हों। जैसे—कम्बः; शम्बः; कम्भः; शम्भः; कंयुः; शंयुः; कन्तिः; शन्तिः; कन्तुः; शन्तुः; कन्तः; शन्तः; कंयः; शंयः।

यहां युस् और यस् प्रत्यय में सकार पदसंज्ञा होने के लिये है। इससे मकार को अनुस्वार और परसवर्ण होते हैं, और जो भसंज्ञा हो तो मकार ही बना रहे ॥ ७३१ ॥

अहंशुभयोर्युस् ॥७३२॥ —अ० ५ । २ । १४० ॥

अहं और शुभम् अव्ययसंज्ञक शब्दों से मत्वर्थ में युस् प्रत्यय हो। जैसे—अहंयुः, यह अहंकारी का नाम है, शुभंयुः, यह कल्याणकारी की संज्ञा है ॥ ७३२ ॥

॥ यह द्वितीय पाद समाप्त हुआ ॥

अथ तृतीयः पादः—

प्राग्दिशो विभक्तिः ॥७३३॥ —अ० ५ । ३ । १ ॥

यह अधिकार सूत्र है।

जो दिक् शब्द के उच्चारण से पूर्व पूर्व प्रत्यय विधान करेंगे, उन उन की विभक्तिसंज्ञा जाननी चाहिये ॥ ७३३ ॥

किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्य ॥७३४॥

—अ० ५ । ३ । २ ॥

यह भी अधिकार सूत्र है।

यहां से आगे किम् शब्द, द्वि आदि से भिन्न सर्वनाम और बहु प्रातिपदिकों से प्रत्ययों का विधान जानना चाहिये ॥७३४॥

इदम इश् ॥७३५॥ —अ० ५ । ३ । ३ ॥

विभक्तिसंज्ञक प्रत्ययों के परे इदम् शब्द को इश् आदेश हो। जैसे—इतः; इह।

यहां इश् आदेश में शकार सब के स्थान में आदेश होने के लिये है ।। ७३५ ।।

एतेतौ रथोः ।।७३६।। —अ० ५ । ३ । ४ ।।

जो प्राग्दिशीय रेफादि और थकारादि विभक्ति परे हों, तो इदम् शब्द को एत और इत् आदेश होवें । जैसे—एतर्हि; इत्थम् ।। ७३६ ।।

सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि ।।७३७।।

—अ० ५ । ३ । ६ ।।

जो दकारादि प्रत्यय परे हों, तो सर्व शब्द को स आदेश विकल्प करके हो । जैसे—सर्वदा; सदा ।। ७३७ ।।

पञ्चम्यास्तसिल् ।।७३८।। —अ० ५ । ३ । ७ ।।

किम् सर्वनाम और बहु प्रातिपदिकों से पञ्चमी विभक्ति के स्थान में तसिल् प्रत्यय हो । जैसे—कस्मादिति कुतः; यस्मादिति यतः; ततः; बहुतः इत्यादि ।। ७३८ ।।

पर्य्यभिभ्याञ्च ।।७३९।। —अ० ५ । ३ । ९ ।।

परि और अभि शब्दों से तसिल् प्रत्यय हो । जैसे—परितः—चारों ओर से; अभितः—सन्मुख से ।। ७३९ ।।

सप्तम्यास्त्रल् ।।७४०।। —अ० ५ । ३ । १० ।।

किम् सर्वनाम और बहु शब्दों से परे सप्तमी विभक्ति के स्थान में त्रल् प्रत्यय हो । जैसे—कस्मिन्निति कुत्र; सर्वस्मिन्निति सर्वत्र; यत्र; तत्र इत्यादि ।। ७४० ।।

इदमो हः ॥७४१॥ —अ० ५ । ३ । ११ ॥

इदम् शब्द से सप्तमी के स्थान में ह प्रत्यय हो। जैसे—अस्मिन्निति इह ॥ ७४१ ॥

किमोऽत् ॥७४२॥ —अ० ५ । ३ । १२ ॥

किम् शब्द से सप्तमी के स्थान में अत् प्रत्यय हो। जैसे—कस्मिन्निति क्व ॥ ७४२ ॥

इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते ॥ ७४३ ॥ —अ० ५ । ३ । १४ ॥

इतर अर्थात् पञ्चमी सप्तमी से अन्य विभक्तियों के स्थान में भी उक्त प्रत्यय देखने में आते हैं ॥ ७४३ ॥

इसमें विशेष यह है कि—

वा०—भवदादिभिर्योगे ॥७४४॥

भवान्, दीर्घायुः, आयुष्मान्, देवानांप्रियः इन चार शब्दों के योग में पूर्व सूत्र से प्रत्ययविधान समझना चाहिये। अर्थात् सूत्र से जो सामान्य विधान था, उसको वार्त्तिक से विशेष जनाया है।

जैसे—स भवान्; तत्र भवान्; ततो भवान्; तम्भवन्तम्; तत्र भवन्तम्; ततो भवन्तम्; तेन भवता; तत्र भवता; ततो भवता; तस्मै भवते; तत्र भवते; ततो भवते; तस्माद्भवतः; तत्र भवतः; ततो भवतः; तस्य भवतः; तत्र भवतः; ततो भवतः; तस्मिन् भवति; तत्र भवति; ततो भवति। स दीर्घायुः; तत्र दीर्घायुः; ततो दीर्घायुः। स आयुष्मान्; तत्रायुष्मान्; तत आयुष्मान्। स देवानांप्रियः; तत्र देवानांप्रियः; ततो देवानांप्रियः इत्यादि ॥७४४॥

सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा ॥७४५॥

—अ० ५ । ३ । १५ ॥

सर्व एक अन्य किम् यद् और तद् प्रातिपदिकों से काल अर्थ में सप्तमी के स्थान में दा प्रत्यय हो।

यह सूत्र त्रल् प्रत्यय का बाधक है। जैसे—सर्वस्मिन् काले इति सर्वदा; एकस्मिन् काले एकदा; अन्यदा; कदा; यदा; तदा इत्यादि।

यहां 'काल' इसलिये कहा है कि—सर्वत्र देशे, यहां दा प्रत्यय न हो ॥ ७४५ ॥

इदमो हिल् ॥७४६॥ —अ० ५ । ३ । १६ ॥

काल अर्थ में इदम् शब्द से सप्तमी के स्थान में हिल् प्रत्यय हो। जैसे—अस्मिन् काले एतर्हि।

यहां काल की अनुवृत्ति आने से 'इह देशे' इस प्रयोग में हिल् प्रत्यय नहीं होता ॥ ७४६ ॥

अधुना ॥७४७॥ —अ० ५ । ३ । १७ ॥

कालाधिकरण अर्थ में इदम् शब्द से सप्तमी विभक्ति के स्थान में धुना प्रत्यय और इदम् शब्द को अश् भाव निपातन करने से अधुना शब्द बनता है। जैसे—अस्मिन् काले इति अधुना ॥ ७४७॥

दानीं च ॥७४८॥ —अ० ५ । ३ । १८ ॥

काल अर्थ में वर्त्तमान इदम् शब्द से सप्तमी विभक्ति के स्थान में दानीं प्रत्यय हो। जैसे—अस्मिन् काले इदानीम् ॥ ७४८ ॥

तदो दा च ।।७४९।। —अ० ५ । ३ । १९ ।।

काल अर्थ में वर्त्तमान तद् शब्द से सप्तमी विभक्ति के स्थान में दा, और चकार से दानीं प्रत्यय हों। जैसे—तस्मिन् काले तदा; तदानीम् ।।७४९।।

तयोर्दार्हिलौ च छन्दसि ।।७५०।।

—अ० ५ । ३ । २० ।।

इदम् और तद् दोनों शब्दों से वैदिकप्रयोगविषय में सप्तमी विभक्ति के स्थान में यथासंख्य करके दा और र्हिल् प्रत्यय हों। जैसे—अस्मिन् काले इदा; तस्मिन् काले तर्हि ।।७५०।।

सद्यः परुत्परार्य्यैषमः परेद्यव्यद्यपूर्वेद्युरन्येद्युरन्यतरेद्युरितरेद्युरपरेद्युरधरेद्युरुभयेद्युरुत्तरेद्युः ।।७५१।।

—अ० ५ । ३ । २२ ।।

यहां सप्तमी विभक्ति और काल की अनुवृत्ति आती है।

इस सूत्र में काल अर्थ में सद्यः आदि शब्द सप्तमी विभक्ति के स्थान में द्यस् आदि प्रत्ययान्त निपातन किये हैं।

जैसे—समाने अहनि सद्यः—समान शब्द को स आदेश और द्यस् प्रत्यय दिवस् अर्थ में हुआ है। पूर्वस्मिन् सम्वत्सरे परुत्; पूर्वतरे सम्वत्सरे परारि—पूर्व और पूर्वतर शब्दों को पर आदेश और उत् तथा आरीच् प्रत्यय सम्वत्सर अर्थ में यथासंख्य करके होते हैं। अस्मिन् सम्वत्सरे ऐषमः—यहां इदम् शब्द से सम्वत्सर अर्थ में समसण् प्रत्यय हुआ है, उसके अण्भाग का लोप होकर इदम् के इकार को वृद्धि हो जाती है। परस्मिन्नहनि परेद्यवि—यहां पर शब्द से दिन अर्थ में एद्यवि प्रत्यय हो गया

है। अस्मिन्नहनि अद्य—यहां इदम् शब्द को अशभाव और द्य प्रत्यय दिन अर्थ में किया है।

और पूर्व अन्य अन्यतर इतर अपर अधर उभय और उत्तर शब्दों से दिन अर्थ अभिधेय रहे, तो एद्युच् प्रत्यय निपातन किया है। जैसे—पूर्वस्मिन्नहनि पूर्वेद्युः; अन्यस्मिन्नहनि अन्येद्युः; अन्यतरस्मिन्नहनि अन्यतरेद्युः; इतरस्मिन्नहनि इतरेद्युः; अपरस्मिन्नहनि अपरेद्युः; अधरस्मिन्नहनि अधरेद्युः; उत्तरस्मिन्नहनि उत्तरेद्युः; उभयोरह्नोः उभयेद्युः ।।७५१।।

वा०—द्युश्चोभयात् ।।७५२।।

उभय शब्द से द्यु प्रत्यय भी हो। जैसे—तस्मान्मनुष्येभ्य उभयद्युः ।।७५२।।

प्रकारवचने थाल् ।।७५३।। —अ० ५। ३। २३ ।।

यहां भी किम् सर्वनाम आदि शब्दों की अनुवृत्ति चली आती है।

प्रकारसमानाधिकरण किम् सर्वनाम और बहु प्रातिपदिकों से स्वार्थ में थाल् प्रत्यय हो। जैसे—तेन प्रकारेण तथा; यथा; सर्वथा; इतरथा; अन्यथा; बहुथा इत्यादि ।।७५३।।

इदमस्थमुः ।।७५४।। —अ० ५। ३। २४ ।।

प्रकारसमानाधिकरण इदम् शब्द से स्वार्थ में थाल् का अपवाद थमु प्रत्यय हो।

उकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है। [जैसे—] अनेन प्रकारेण इत्थम् ।।७५४।।

किमश्च ॥७५५॥ —अ० ५ । ३ । २५ ॥

प्रकारसमानाधिकरण किम् शब्द से भी स्वार्थ में थमु प्रत्यय होवे । जैसे—केन प्रकारेण कथम् ॥७५५॥

था हेतौ च छन्दसि ॥७५६॥ —अ० ५ । ३ । २६ ॥

यहां पूर्व सूत्र से किम् और प्रकारवचन शब्द की अनुवृत्ति आती है ।

वैदिक प्रयोगविषय में हेतुसमानाधिकरण किम् प्रातिपदिकों से था प्रत्यय हो ।

यह थमु प्रत्यय का बाधक है । [जैसे—] केन हेतुना इति कथा; केन प्रकारेण इति कथा ॥७५६॥

दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः ॥७५७॥ —अ० ५ । ३ । २७ ॥

सप्तमी, पञ्चमी और प्रथमासमर्थ दिशा देश और काल अर्थों में दिशावाची पूर्वादि शब्दों से स्वार्थ में अस्ताति प्रत्यय होवे । जैसे—[सप्तमीसमर्थ से—] पूर्वस्यां दिशि पूर्वस्मिन् देशे काले वा पुरस्तात्; अधस्तात् । पञ्चमीसमर्थ से—पुरस्तादागतः । प्रथमासमर्थ से—पुरस्ताद्रमणीयम् इत्यादि ।

यहां समर्थविभक्ति और दिशा आदि अर्थों का यथासंख्य अभीष्ट नहीं है । यहां 'दिशावाचियों का' ग्रहण इसलिये है कि—ऐन्द्रयां दिशि वसति, यहां ऐन्द्री शब्द दिशा का गौण नाम है । 'सप्तमी आदि समर्थविभक्तियों का' ग्रहण इसलिये है कि—पूर्वं ग्रामं गतः, यहां भी अस्ताति प्रत्यय नहीं होता । और 'दिग् देश

काल अर्थों' का ग्रहण इसलिये है कि—पूर्वस्मिन् गुरौ वसति, यहाँ भी प्रत्यय न होवे ।

अस्ताति प्रत्यय में इकार तकार की रक्षा के लिये है ।।७५७।।

दक्षिणोत्तराभ्यामतसुच् ।।७५८।।—अ० ५ । ३ । २८ ।।

यह सूत्र, अस्ताति प्रत्यय पूर्वसूत्र से प्राप्त है, उसका अपवाद है ।

दिशा देश और काल अर्थों में वर्त्तमान सप्तमी पञ्चमी और प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से स्वार्थ में अतसुच् प्रत्यय होवे । जैसे—दक्षिणतो वसति; दक्षिणत आगत; दक्षिणतो रमणीयम्; उत्तरतो वसति; उत्तरत आगतः; उत्तरतो रमणीयम् ।।

अतसुच् प्रत्यय के उच्मात्र की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है । और इस सूत्र में दक्षिण शब्द का सम्बन्ध काल के साथ असम्भव होने से नहीं होता, किन्तु दिशा और देश दो ही अर्थों के साथ होता है ।।७५८।।

विभाषा परावराभ्याम् ।।७५९।। —अ० ५ । ३ । २९ ।।

यहां अप्राप्तविभाषा इसलिये समझना चाहिये कि अतसुच् प्रत्यय किसी से प्राप्त नहीं । अतसुच् का विकल्प होने से पक्ष में अस्ताति भी हो जाता है ।

अस्ताति प्रत्यय के अर्थों में पर और अवर शब्दों से अतसुच् प्रत्यय विकल्प करके हो, और पक्ष में अस्ताति हो जावे ।

जैसे—परतो वसति; परत आगतः; परतो रमणीयम्; परस्ताद्वसति; परस्तादागतः; परस्ताद्रमणीयम्; अवरतो वसति; अवरत आगतः; अवरतो रमणीयम्; अवस्ताद्वसति; अवस्तादागतः; अवस्ताद्रमणीयम् ।।७५९।।

अञ्चेर्लुक् ॥७६०॥ —अ० ५ । ३ । ३० ॥

क्विबन्त अञ्चुधातु जिनके अन्त में हो, ऐसे दिशावाची शब्दों से परे अस्ताति प्रत्यय का लुक् हो जावे। जैसे—प्राच्यां दिशि वसति प्राग्वसति; प्रागागतः; प्राग्रमणीयम्।

यहां तद्धितसंज्ञक अस्ताति प्रत्यय का लुक् होने के पश्चात् (लुक्तद्धित०) इस सूत्र से स्त्रीप्रत्यय का भी लुक् हो जाता है ॥७६०॥

उपर्युपरिष्टात् ॥७६१॥ —अ० ५ । ३ । ३१ ॥

यहां ऊर्ध्व शब्द को उपभाव और रिल् तथा रिष्टातिल् प्रत्यय अस्ताति के अर्थ में निपातन किये हैं। जैसे—ऊर्ध्वायां दिशि वसति उपरि वसति; उपर्यागतः; उपरि रमणीयम्; उपरिष्टाद्वसति; उपरिष्टादागतः; उपरिष्टाद्रमणीयम् ॥७६१॥

पश्चात् ॥७६२॥ —अ० ५ । ३ । ३२ ॥

यहां अपर शब्द को पश्च आदेश और आति प्रत्यय निपातन किया है। जैसे—अपरस्यां दिशि वसति पश्चाद्वसति; पश्चादागतः; पश्चाद्रमणीयम् ॥७६२॥

वा०—दिक्पूर्वपदस्य च ॥७६३॥

दिशा जिसके पूर्वपद में हो, उस अपर शब्द को भी पश्च आदेश और आति प्रत्यय हो। जैसे—दक्षिणपश्चात्; उत्तरपश्चात् ॥७६३॥

वा०—अर्द्धोत्तरपदस्य च समासे ।।७६४।।

दिशावाची शब्द जिसके पूर्वपद में हों, और समास में अर्द्ध शब्द जिसके उत्तरपद में हो, ऐसे अपर शब्द को पश्च आदेश होवे । जैसे—दक्षिणपश्चार्द्धः; उत्तरपश्चार्द्धः ।।७६४।।

वा०—अर्द्धे च ।।७६५।।

पूर्व पद के विना भी अर्द्ध जिसके उत्तरपद में हो, उस अपर शब्द को भी पश्च आदेश हो । जैसे—पश्चार्द्धः ।। ७६५ ।।

पश्च पश्चा च छन्दसि ।।७६६।। —अ० ५ । ३ । ३३ ।।

यहां अपर शब्द को पश्च आदेश अ तथा आ प्रत्यय वैदिकप्रयोगविषय में होते हैं, और चकार से आति प्रत्यय भी हो । जैसे—पश्च सिंहः; पश्चा सिंहः; पश्चात् सिंहः ।।७६६।।

उत्तराधरदक्षिणादातिः ।।७६७।। —अ० ५ । ३ । ३४ ।।

उत्तर अधर और दक्षिण शब्दों से अस्ताति प्रत्यय के अर्थ में आति प्रत्यय होवे । जैसे—उत्तरस्यां दिशि वसति उत्तराद्वसति; उत्तरादागतः; उत्तराद्रमणीयम्; अधराद्वसति; अधरादागतः; अधराद्रमणीयम्; दक्षिणाद्वसति; दक्षिणादागतः; दक्षिणाद्रमणीयम् ।।७६७।।

एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः ।।७६८।।

—अ० ५ । ३ । ३५ ।।

यहां एनप् प्रत्यय में अप्राप्तविभाषा है, क्योंकि एनप् प्रत्यय किसी से प्राप्त नहीं है । और पूर्व सूत्र से उत्तर आदि तीनों शब्दों की अनुवृत्ति आती है ।

सप्तमी और प्रथमासमर्थ उत्तर अधर और दक्षिण शब्दों से निकट अर्थ में आति प्रत्यय का बाधक एनप् प्रत्यय विकल्प करके हो, पक्ष में आति भी हो जावे ।

जैसे—उत्तरस्यां दिशि वसति उत्तरेण वसति; उत्तराद्वसति; उत्तरतो वसति; .उत्तरेण रमणीयम्; उत्तराद्रमणीयम्; उत्तरतो रमणीयम्; अधरेण वसति; अधराद्वसति; अधस्ताद्वसति; अधरेण रमणीयम्; अधराद्रमणीयम्; अधस्ताद्रमणीयम्; दक्षिणेन वसति; दक्षिणाद्वसति; दक्षिणतो वसति; दक्षिणेन रमणीयम्; दक्षिणाद्रमणीयम्; दक्षिणतो रमणीयम् ।

यहां 'अदूर' ग्रहण इसलिये है कि—उत्तराद्वसति, यहां एनप् न होवे । और 'पञ्चमीसमर्थ का निषेध' इसलिए किया है कि—उत्तरादागतः, यहां भी एनप् प्रत्यय न होवे ।

और यहां से आगे असि प्रत्यय के पूर्व पूर्व सब सूत्रों में पञ्चमीसमर्थ का निषेध समझना चाहिए ।।७६८।।

दक्षिणादाच् ।।७६९।। —अ० ५ । ३ । ३६ ।।

सप्तमी और प्रथमासमर्थ दक्षिण शब्द से अस्ताति के अर्थ में आच् प्रत्यय हो । जैसे—दक्षिणा वसति; दक्षिणा रमणीयम् ।

यहां 'पञ्चमी का निषेध' इसलिए है कि—दक्षिणत आगतः; यहां आच् प्रत्यय न हो ।।७६९।।

आहि च दूरे ।।७७०।। —अ० ५ । ३ । ३७ ।।

यहां पूर्व से दक्षिण शब्द की अनुवृत्ति आती है ।

दक्षिण प्रातिपदिक से अस्ताति के अर्थ में आहि, चकार से आच् प्रत्यय होवे। जैसे—दक्षिणाहि वसति; दक्षिणा वसति; दक्षिणाहि रमणीयम्; दक्षिणा रमणीयम्।

यहां 'दूर' ग्रहण इसलिये है कि—दक्षिणतो वसति, यहां न हो। और 'पञ्चमीसमर्थ का निषेध' इसलिये है कि—दक्षिणत आगतः, यहां भी आहि प्रत्यय न होवे ॥७७०॥

उत्तराच्च ॥७७१॥ —अ० ५। ३। ३८॥

उत्तर शब्द से अस्ताति प्रत्यय के अर्थ में दूर अर्थ वाच्य रहे, तो आच् और आहि प्रत्यय हों। जैसे—उत्तरा वसति; उत्तराहि वसति; उत्तरा रमणीयम्; उत्तराहि रमणीयम्।

यहां 'दूर' ग्रहण इसलिये है कि—उत्तरेण प्रयाति, यहां न हो। और 'पञ्चमीसमर्थ का निषेध' इसलिये है कि—उत्तरादागतः, यहां भी आहि प्रत्यय न होवे ॥७७१॥

पूर्वाधरावराणामसि पुरधवश्चैषाम् ॥७७२॥
—अ० ५। ३। ३९॥

सप्तमी पञ्चमी और प्रथमासमर्थ पूर्व अधर और अवर प्रातिपदिकों से अस्ताति प्रत्यय के अर्थ में असि प्रत्यय, और पूर्व आदि शब्दों को क्रम से पुर् अध् और अव् आदेश भी होवें।

जैसे—पूर्वस्यां दिशि वसति पुरो वसति; पुर आगतः; पुरो रमणीयम्; अधो वसति; अध आगतः; अधो रमणीयम्; अवो वसति; अव आगतः; अवो रमणीयम् ॥७७२॥

अस्ताति च ।।७७३।। —अ० ५ । ३ । ४० ।।

अस्ताति प्रत्यय परे हो, तो भी पूर्व आदि तीनों शब्दों को पुर् आदि आदेश क्रम से हों। और यहां अस्ताति प्रत्यय भी इस आदेश-विधानरूप ज्ञापक से ही समझना चाहिए। जैसे—पुरस्ताद्वसति; पुरस्तादागतः; पुरस्ताद्रमणीयम्; अधस्ताद्वसति; अधस्तादागतः; अधस्ताद्रमणीयम् ।।७७३।।

विभाषाऽवरस्य ।। ७७४ ।। —अ० ५ । ३ । ४१ ।।

यहां प्राप्तविभाषा है। पूर्व से नित्य ही अव आदेश प्राप्त है।

अवर शब्द को अस्ताति प्रत्यय के परे अव् आदेश विकल्प करके हो। जैसे—अवस्ताद्वसति; अवस्तादागतः; अवस्ताद्रमणीयम् ।।७७४।।

संख्याया विधार्थे धा ।।७७५।। —अ० ५ । ३ । ४२ ।।

क्रिया के प्रकार अर्थ में वर्त्तमान संख्यावाची प्रातिपदिकों से स्वार्थ में धा प्रत्यय हो। जैसे—एकधा भुङ्क्ते; द्विधा गच्छति; चतुर्धा; पञ्चधा इत्यादि ।।७७५।।

याप्ये पाशप् ।। ७७६ ।। —अ० ५ । ३ । ४७ ।।

याप्य—निन्दित—अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में पाशप् प्रत्यय हो। जैसे—कुत्सितो वैयाकरणो वैयाकरणपाशः; याज्ञिकपाशः इत्यादि।

जो पुरुष व्याकरण शास्त्र में प्रवीण और बुरे आचरण करता हो, उसकी 'वैयाकरणपाश' संज्ञा इसलिए नहीं होती कि

जिस गुण के विद्यमान होने से वैयाकरण शब्द की प्रवृत्ति उस पुरुष में होती है, उसी गुण की निन्दा में प्रत्यय होता है ॥७७६॥

एकादाकिनिच्चासहाये ॥७७७॥ —अ० ५ । ३ । ५२ ॥

असहायवाची एक शब्द से स्वार्थ में आकिनिच् प्रत्यय हो, और चकार से कन् प्रत्यय और लुक् भी हों। जैसे—एकाकी, एककः, एकः ।

यहां आकिनिच् और कन् दोनों का लुक् समझना चाहिये, परन्तु प्रत्ययविधान व्यर्थ न हो इसलिये पक्ष में लुक् होता है ॥७७७॥

अतिशायने तमबिष्ठनौ ॥७७८॥—अ० ५ । ३ । ५५ ॥

अतिशायन—प्रकृत्यर्थ की उन्नति—अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में तमप् और इष्ठन् प्रत्यय हों।

जैसे—अतिशयितः श्रेष्ठःश्रेष्ठतमः; वैयाकरणतमः; आढ्यतमः; दर्शनीयतमः; सुकुमारतमः इत्यादि । अयमेषामतिशयेन पटुः पटिष्ठः; लघिष्ठः; गरिष्ठः इत्यादि ॥७७८॥

तिङश्च ॥७७९॥ —अ० ५ । ३ । ५६ ॥

यहां तद्धितप्रकरण में चतुर्थाध्याय के आदि में ङीबन्त आबन्त और प्रातिपदिकों से प्रत्ययविधान का अधिकार कर चुके हैं। इस कारण तिङन्त शब्दों से प्रत्ययविधान नहीं प्राप्त है, इसीलिये यह सूत्र पढ़ा है ।

तिङन्त शब्दों से अतिशय अर्थ में तमप् प्रत्यय हो। जैसे—अयमेषु भृशं पचति पचतितमाम्; जल्पतितमाम् इत्यादि ।

यहां पूर्वसूत्र से इष्ठन् प्रत्यय इसलिए नहीं आता कि प्रत्ययान्त गुणवाची शब्दों से लोक में वाच्य अर्थों के साथ सम्बन्ध दीखता है, क्रिया शब्दों के साथ नहीं ।।७७९।।

द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ ।।७८० ।।

—अ० ५ । ३ । ५७ ।।

यहां तिङन्त की अनुवृत्ति पूर्व सूत्र से आती है ।

जहां विभाग करने योग्य दो और व्यक्तियों का कहना उपपद हो, वहां सामान्य प्रातिपदिकों और तिङन्त शब्दों से अतिशय अर्थ में तरप् और ईयसुन् प्रत्यय हों ।

जैसे—द्वाविमावाढ्यौ अयमनयोरतिशयेनाढ्यः आढ्यतरः; द्वाविमौ विद्वांसौ अयमनयोरतिशयेन विद्वान् विद्वत्तरः; प्राज्ञतरः; पचतितराम् जल्पतितराम् इत्यादि । ईयसुन्—द्वाविमौ गुरू, अयमनयोरतिशयेन गरीयान्; पटीयान्; लघीयान् इत्यादि ।

विभज्योपपद से—माथुराः पाटलिपुत्रेभ्य आढ्यतराः; वाराणसेया इतरेभ्यो विद्वत्तराः; दर्शनीयतराः इत्यादि । ईयसुन्—गरीयांसः; पटीयांसः इत्यादि ।।७८०।।

अजादी गुणवचनादेव ।।७८१।। —अ० ५ । ३ । ५८ ।।

पूर्व सूत्रों में जो अजादि—इष्ठन्, ईयसुन्—प्रत्यय सामान्य करके कहे हैं, उनका यहां विषयनियम करते हैं, कि वे दोनों प्रत्यय गुणवाची प्रातिपदिक से ही होवें, अन्य से नहीं । उदाहरण पूर्व दे चुके हैं ।

नियम होने से पाचकतरः; पाचकतमः इत्यादि में इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय नहीं होते । और प्रत्यय का नियम समझना

चाहिए, प्रकृति का नहीं। अर्थात् गुणवाची प्रातिपदिकों से तरप् तमप् प्रत्यय भी होते हैं, और द्रव्यवाचक शब्दों से तरप् तमप् ही होते हैं, इष्ठन् और ईयुसुन् नहीं होते ।।७८१।।

तुश्छन्दसि ।।७८२।। —अ० ५ । ३ । ५९ ।।

यहाँ पूर्व सूत्र से अजादि की अनुवृत्ति चली आती है। पूर्व सूत्र में गुणवाचियों से नियम किया है, इससे यहाँ प्राप्ति नहीं थी।

तृच् और तृन् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से वेदविषय में इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय होवें। जैसे—आसुतिं करिष्ठः, 'अतिशयेन कर्त्ता' ऐसा विग्रह होगा; अतिशयेन दोग्ध्री दोहीयसी धेनुः।

यहां सामान्य भसंज्ञा में (भस्याढे०) इससे पुंवद्भाव होकर तृच् तृन् प्रत्ययों का लुक् हो जाता है ।।७८२।।

प्रशस्यस्य श्रः ।।७८३।। —अ० ५ । ३ । ६० ।।

अजादि प्रत्ययों के परे प्रशस्य शब्द को श्र आदेश होवे। जैसे—सर्वे इमे प्रशस्याः अयमतिशयेन प्रशस्यः श्रेष्ठः; द्वाविमौ प्रशस्यौ अयमनयोरतिशयेन प्रशस्यः श्रेयान्।

तद्धितप्रत्ययों के परे भसंज्ञक एकाच् शब्दों को प्रकृतिभाव होने से श्र शब्द के टिभाग का लोप नहीं होता ।।७८३।।

ज्य च ।।७८४।। —अ० ५ । ३ । ६१ ।।

प्रशस्य शब्द को अजादि प्रत्ययों के परे ज्य आदेश भी हो। जैसे—सर्वे इमे प्रशस्याः अयमनयोरतिशयेन प्रशस्यः ज्येष्ठः; द्वाविमौ प्रशस्यौ अयमतिशयेन प्रशस्यः ज्यायान्।

यहां ईयसुन् के ईकार को आकारादेश (ज्यादादी०) इस वक्ष्यमाण सूत्र से हो जाता है ।। ७८४ ।।

वृद्धस्य च ।। ७८५ ।। —अ० ५ । ३ । ६२ ।।

वृद्ध शब्द को भी अजादि प्रत्ययों के परे ज्य आदेश होवे । जैसे—सर्वे इमे वृद्धाः अयमेषामतिशयेन वृद्धः ज्येष्ठः; उभाविमौ वृद्धौ अयमनयोरतिशयेन वृद्धः ज्यायान् ।

और (प्रियस्थिर०) इस वक्ष्यमाण सूत्र से वृद्ध शब्द को वर्ष आदेश भी होता है, परन्तु वृद्ध आदेश कहना व्यर्थ न होजावे, इसलिये पक्ष में समझना चाहिये । जैसे—वर्षिष्ठः, वर्षीयान् ।। ७८५ ।।

अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ ।।७८६।। —अ० ५ । ३ । ६३ ।।

अन्तिक और बाढ शब्दों को यथासंख्य करके अजादि प्रत्ययों के परे नेद और साध आदेश होवें । जैसे—सर्वाणीमान्यन्तिकानि इदमेषामतिशयेनान्तिकं नेदिष्ठम्; उभे इमे अन्तिके इदमनयोरतिशयेनान्तिकं नेदीयः; सर्वे इमे बाढमधीयते नेदिष्ठमधीयते; अयमस्मात् साधीयोऽधीते ।। ७८६ ।।

युवाल्पयोः कनन्यतरस्याम् ।।७८७।।

—अ० ५ । ३ । ६४ ।।

इस सूत्र में अप्राप्तविभाषा इसलिये समझनी चाहिये, कि अजादि प्रत्ययों के परे कन् आदेश किसी सूत्र से प्राप्त नहीं ।

युव और अल्प शब्दों के स्थान में अजादि प्रत्ययों के परे कन् आदेश विकल्प करके होवे ।

जैसे—सर्व इमे युवान: अयमेषामतिशयेन युवा कनिष्ठ:, यविष्ठ:; द्वाविमौ युवानौ अयमनयोरतिशयेन युवा कनीयान्, यवीयान्; सर्व इमेऽल्पा: अयमतिशयेनाल्प: कनिष्ठ:, अल्पिष्ठ:; द्वाविमावल्पौ अयमतिशयेनल्प: कनीयान्, अल्पीयान् ॥ ७८७ ॥

विन्मतोर्लुक् ॥७८८॥ —अ० ५ । ३ । ६५ ॥

विन् और मतुप् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से अजादि प्रत्यय परे हों, तो विन् और मतुप् प्रत्यय का लुक् हो जावे ।

जैसे—सर्व इमे स्रग्विण: अयमेषामतिशयेन स्रग्वी स्रजिष्ठ:; मायिष्ठ: इत्यादि; उभाविमौ स्रग्विणौ अयमनयोरतिशयेन स्रग्वी स्रजीयान्; अयमस्मात् स्रजीयान्; सर्व इमे धनवन्त: अयमेषामतिशयेन धनवान् धनिष्ठ:; उभाविमौ धनवन्तौ अयमनयोरतिशयेन धनवान् धनीयान्; अयमस्मात् धनीयान् इत्यादि ।

(प्रशस्यस्य श्र:) इस सूत्र से ले के यहां तक सब सूत्रों में आदेश विधानरूप ज्ञापक से अजादि प्रत्ययों—इष्ठन्, ईयसुन्—की उत्पत्ति उन उन प्रशस्य आदि प्रातिपदिकों से समझनी चाहिये ॥ ७८८ ॥

प्रशंसायां रूपप् ॥७८९॥ —अ० ५ । ३ । ६६ ॥

प्रकृत्यर्थ की प्रशंसा अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में रूपप् प्रत्यय होवे । जैसे—प्रशस्तो वैयाकरणो वैयाकरणरूप:; याज्ञिकरूप:; पाचकरूप:; उपदेशकरूप:; प्राज्ञरूप: इत्यादि ।

यहां पूर्व से तिङन्त की भी अनुवृत्ति चली आती है । जैसे—पचतिरूपम्; पठतिरूपम्; जल्पतिरूपम् ।

तद्धित प्रत्ययान्त आख्यात क्रियाओं से द्विवचन बहुवचन विभक्ति नहीं आती, और सब विभक्तियों के एकवचन भी नहीं होते, किन्तु अव्ययसंज्ञा होजाने से सब विभक्तियों के स्थान में अम् आदेश हो जाता है। परन्तु द्विवचनान्त और बहुवचनान्त क्रियाओं से तो तद्धित प्रत्यय हो जाते हैं। जैसे—पठतोरूपम्; पठन्तिरूपम् इत्यादि ॥ ७८९ ॥

ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः ॥७९०॥

—अ० ५ । ३ । ६७ ॥

समाप्ति होने में थोड़ी न्यूनता अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में कल्पप् देश्य और देशीयर् प्रत्यय होवें। जैसे—ईषदसमाप्ता विद्या विद्यकल्पः; विद्यादेश्यः; विद्यादेशीयः; ईषदसमाप्तः पटः पटकल्पः; पटदेश्यः; पटदेशीयः; मृदुकल्पः; मृदुदेश्यः; मृदुदेशीयः इत्यादि।

तिङन्त की भी अनुवृत्ति चली आती है। जैसे—पचतिकल्पम्; पठतिकल्पम्; पठतिदेश्यम्; पठतिदेशीयम्; पठतःकल्पम्; पठन्तिकल्पम् इत्यादि ॥ ७९० ॥

विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात्तु ॥ ७९१॥

—अ० ५ । ३ । ६८ ॥

यहां भी अप्राप्तविभाषा है, क्योंकि सुबन्त से पूर्व बहुच् प्रत्यय किसी से प्राप्त नहीं। और यहां पूर्वसूत्र से ईषदसमाप्ति अर्थ की अनुवृत्ति भी चली आती है। ईषदसमाप्ति अर्थ में वर्त्तमान सुबन्त से पूर्व बहुच् प्रत्यय विकल्प करके होवे।

तृतीयाध्याय के आरम्भ में प्रत्ययों के धातु प्रातिपदिकों से परे होने का अधिकार कर चुके हैं, इसलिये यहां पुरस्तात् शब्द

पढ़ा है कि प्रातिपदिकों के आदि में प्रत्यय हों। जैसे—ईषदसमाप्तो लेख: बहुलेख:; बहुपटु:; बहुमृदु:; बहुगुडा द्राक्षा इत्यादि।

विकल्प के कहने से 'कल्पप्' आदि प्रत्यय भी इन प्रातिपदिकों से होते हैं। और सुबन्तग्रहण तिङन्त की निवृत्ति के लिये है ॥ ७९१ ॥

प्रकारवचने जातीयर् ॥७९२॥ —अ० ५। ३। ६९॥

प्रकार के कहने अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिकों से स्वार्थ में जातीयर् प्रत्यय होवे। जैसे—एवम्प्रकार: एवञ्जातीय:; मृदुप्रकार: मृतुजातीय:; प्रमाणजातीय:; प्रमेयजातीय: इत्यादि ॥ ७९२ ॥

प्रागिवात्क: ॥७९३॥ —अ० ५। ३। ७अ॥

यह अधिकार सूत्र है। यहां से आगे (इवे प्रतिकृतौ) इस सूत्रपर्य्यन्त सब सूत्रों तथा अर्थों में सामान्य करके क प्रत्यय होगा। जैसे—अश्वक:; वृषभक:; गोक: इत्यादि।

तिङन्त की अनुवृत्ति इस सूत्र में नहीं आती, किन्तु उत्तरसूत्र में तो आती है ॥ ७९३ ॥

अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टे: ॥७९४॥
—अ० ५। ३। ७०॥

यहां तिङन्त की भी अनुवृत्ति आती है। और यह सूत्र क प्रत्यय का अपवाद है। अव्यय सर्वनामसंज्ञक और तिङन्त शब्दों के टि भाग से पूर्व अकच् प्रत्यय होवे।

यहां भी प्रत्ययों का पर होना अधिकार होने से टि से पूर्व नहीं प्राप्त है, इसलिये प्राक्ग्रहण किया है। जैसे—अव्ययों से—उच्चकै:; नीचकै:; शनकै: इत्यादि। सर्वनामसंज्ञकों से—सर्वके,

सर्वे; विश्वके, विश्वे; उभयके, उभये; यका; सका; या; सा; यकः; सकः; यः; सः; एषकः, एषः।

यहां प्रातिपदिक और सुबन्त दोनों की अनुवृत्ति चली आती है, इस कारण कहीं प्रातिपदिक के टि से पूर्व और कहीं सुबन्त के टि से पूर्व अकच् प्रत्यय होता है।

प्रातिपदिक के टि से पूर्व—जैसे—युष्मकाभिः; अस्मकाभिः; युष्माभिः; अस्माभिः; युष्मकासु; अस्मकासु; युष्मासु; अस्मासु; युवकयोः; आवकयोः; युवयोः; आवयोः इत्यादि। सुबन्त के टि से पूर्व—जैसे—त्वयका; मयका; त्वया; मया; त्वयकि; मयकि; त्वयि; मयि इत्यादि। तिङन्त से—भवतकि; पचतकि; पठतकि; जल्पतकि इत्यादि ॥ ७९४ ॥

वा०—अकचप्रकरणे तूष्णीमः काम् ॥७९५॥

तूष्णीम् मकारान्त अव्यय शब्द के टि भाग से पूर्व अकच् प्रत्यय का बाधक काम् प्रत्यय होवे। जैसे—आसितव्यं किल तूष्णीकाम् ॥ ७९५ ॥

वा०—शीले को मलोपश्च ॥७९६॥

शील अर्थ में तूष्णीम् अव्यय शब्द से क प्रत्यय और तूष्णीम् शब्द के मकार का लोप हो जावे। जैसे—तूष्णींशीलः तूष्णीकः ॥७९६॥

कस्य च दः ॥७९७॥ —अ० ५। ३। ७२॥

यहां अव्ययों के सम्बन्ध का सूत्रार्थ के साथ सम्भव होने से अव्यय की अनुवृत्ति पूर्व सूत्र से आती है, सर्वनाम की नहीं। क्योंकि सर्वनाम शब्द कोई ककारान्त नहीं है।

ककारान्त अव्ययों को अकच् प्रत्यय के संयोग में दकारान्त आदेश होवे। जैसे—धिक्, धकित्; हिरुक्, हिरकुत्; पृथक्, पृथकत् इत्यादि ।।७९७।।

अनुकम्पायाम् ।।७९८।। —अ० ५ । ३ । ७६ ।।

दूसरों के दुःखों को यथाशक्ति निवारण करने को 'अनुकम्पा' कहते हैं। अनुकम्पा अर्थ में वर्त्तमान सामान्य प्रातिपदिकों और तिङन्त शब्दों से यथाप्राप्त प्रत्यय हों।

जैसे—पुत्रकः; वत्सकः; दुर्बलकः; बुभुक्षितकः; ज्वरितकः इत्यादि। तिङन्तों से—शेतके; विश्वसितकि; स्वपितकि; प्राणितकि इत्यादि ।। ७९८ ।।

ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादचः ।।७९९।।

— अ० ५ । ३ । ८३ ।।

यहां पूर्व सूत्र से लोप की अनुवृत्ति आती है।

इस प्रकरण में जो ठ अजादि प्रत्यय हैं, उनके परे प्रकृति के द्वितीय अच् से अन्य जो शब्दरूप है उसका लोप हो। ऊर्ध्व शब्द के ग्रहण से सब का लोप हो जाता है।

जैसे—अनुकम्पितो देवदत्तः देविकः, देवियः, देविलः; यज्ञिकः, यज्ञियः, यज्ञिलः—यहां देवदत्त और यज्ञदत्त शब्द से ठ, घ और इलच् प्रत्यय क्रम से हुए हैं। अनुकम्पित उपेन्द्रदत्तकः उपडः, उपकः, उपियः, उपिलः, उपिकः—यहां उपेन्द्रदत्त शब्द से अडच्, वुच्, घ, इलच् तथा ठच् प्रत्यय होते हैं।

इस सूत्र में ड को भी इक् आदेश हो जाता है। फिर अजादि के कहने से ठ प्रत्यय का भी ग्रहण हो जाता, फिर 'ठ प्रत्यय का'

ग्रहण इसलिये है कि—जहां उक् प्रत्याहार से परे ठ के स्थान में क आदेश होता है, वहां भी दो अच् से अन्य वर्णों का लोप हो जावे। जैसे—अनुकम्पितो वायुदत्तः वायुकः; पितृकः ॥७९९॥

वा०—द्वितीयादचो लोपे संध्यक्षरस्य द्वितीयत्वे तदादेर्लोपो वक्तव्यः ॥८००॥

दो अक्षरों से अन्य वर्णों का जो लोप सूत्र से कहा है, सो जो द्वितीय अक्षर सन्ध्यक्षर—ए, ऐ, ओ, औ—हों, तो वहां सन्ध्यक्षर का भी लोप हो जावे। जैसे—लहोडः, लहिकः; कहोड़ः, कहिकः।

यहां लहोड कहोड किसी मनुष्यविशेष की संज्ञा है, उन में हकारविशिष्ट ओकार का भी लोप हो जाता है ॥८००॥

वा०—चतुर्थात् ॥८०१॥

द्वितीय अच् से परे अन्य भाग का जो लोप कहा है, सो चतुर्थ अच् से परे भी हो जावे। जैसे—बृहस्पतिदत्तकः बृहस्पतिकः, बृहस्पतियः, बृहस्पतिलः इत्यादि ॥८०१॥

वा०—अनजादौ च ॥८०२॥

अजादि प्रत्यय के परे लोप कहा है, सो हलादि प्रत्ययों के परे भी द्वितीय अच् से ऊर्ध्व का लोप हो। जैसे—देवदत्तकः देवकः; यज्ञदत्तकः यज्ञकः—यहां कन् प्रत्यय हुआ है ॥८०२॥

वा०—लोपः पूर्वपदस्य च ॥८०३॥

अजादि हलादि सामान्य प्रत्ययों के परे संज्ञावाची शब्दों के पूर्वपद का भी लोप हो जावे। जैसे—देवदत्तको दत्तकः, यज्ञदत्तको दत्तकः, दत्तिकः, दत्तियः, दत्तिलः इत्यादि ॥८०३॥

वा०—अप्रत्यये तथैवेष्टः ॥८०४॥

कोई भी प्रत्यय न परे हो, तो भी पूर्वपद का लोप होवे। जैसे—देवदत्तो दत्तः इत्यादि ॥८०४॥

वा०—उवर्णाल्ल इलस्य च ॥८०५॥

उवर्णान्त संज्ञा शब्द से परे जो इलच् प्रत्यय उसके इकार का लोप हो। जैसे—भानुदत्तो भानुलः; वसुदत्तो वसुलः इत्यादि ॥८०५॥

वा०—एकाक्षरपूर्वपदानामुत्तरपदलोपः ॥८०६॥

एकाक्षर जिनका पूर्वपद हो, उनके उत्तरपद का लोप हो, अजादि प्रत्ययों के परे। जैसे—वागाशीः; वाचिकः; स्रुचिकः; स्वचिकः इत्यादि ॥८०६॥

किंयत्तदोर्निर्द्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच् ॥८०७॥
—अ० ५।३।९२॥

दो में से एक का जहां निर्द्धारण—पृथक्—करना हो, वहां किम् यत् और तत् प्रातिपदिकों से डतरच् प्रत्यय होवे।

जातिवाची क्रियावाची गुणवाची वा संज्ञा शब्दों के समुदाय से एकदेश का पृथक् करना होता है। जैसे—कतरो भवतोः कठः; कतरो भवतोः कारकः; कतरो भवतोः पटुः; कतरो भवतोर्देवदत्तः; यतरो भवतोः कठः; यतरो भवतोः कारकः; यतरो भवतोः पटुः; यतरो भवतोर्देवदत्तः ततर आगच्छतु इत्यादि।

यहां महाविभाषा अर्थात् (समर्थानां०) इस सूत्र से विकल्प की अनुवृत्ति चली आती है। इससे को भवतोर्देवदत्तः स आगच्छतु इत्यादि वाक्यों में डतरच् प्रत्यय नहीं होता ॥८०७॥

वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच् ॥८०८॥

—अ० ५ । ३ । ९३ ॥

पूर्व सूत्र से किम् आदि शब्दों और एक के निर्द्धारण की अनुवृत्ति आती है।

बहुतों में से एक का निर्द्धारण करना अर्थ हो, तो जाति के पूछने अर्थ में वर्त्तमान किम् आदि शब्दों से विकल्प करके डतमच् प्रत्यय होवे। जैसे—कतमो भवतां कठः; यतमो भवतां कठः ततम आगच्छतु इत्यादि।

यहां विकल्प के होने से पक्ष में इसी अर्थ में अकच् भी होता है। जैसे—यको भवतां कठः सक आगच्छतु। और महाविभाषा के चले आने से वाक्य भी बना रहता है। जैसे यो भवतां कठः स आगच्छतु।

यहां 'जातिपरिप्रश्न' का ग्रहण इसलिये है कि—को भवतां देवदत्तः, यहाँ निज की संज्ञा के प्रश्न में किम् शब्द से डतमच् प्रत्यय नहीं होता। और परिप्रश्न का सम्बन्ध एक किम् शब्द के साथ ही समझना चाहिये, क्योंकि यत् तत् के साथ वह अर्थ सम्भवित नहीं होता ॥८०८॥

इवे प्रतिकृतौ ॥८०९॥ —अ० ५ । ३ । ९६ ॥

यहां पूर्व से परिप्रश्न की अनुवृत्ति आती है।

उपमावाचक अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय होवे। जैसे—अश्व इव प्रतिकृतिः अश्वकः; गर्दभकः; उष्ट्रकः।

यहाँ 'प्रतिकृति' ग्रहण इसलिये है कि—गौरिव गवयः, यहां केवल उपमा ही है प्रतिकृति नहीं, इससे कन् प्रत्यय नहीं होता ॥८०९॥

लुम्मनुष्ये ॥८१०॥ —अ० ५ । ३ । ९८ ॥

प्रतिकृति सादृश्यार्थसंज्ञा हो, तो उस अर्थ में विहित कन् प्रत्यय का लुप् हो जावे । जैसे—चञ्चेव मनुष्यः चञ्चा; दासी; खरकुटी इत्यादि, यहां तद्धित-प्रत्यय का लुप् होने से लिङ्ग और वचन पूर्व के ही हो जाते हैं ।

यहां 'मनुष्य' ग्रहण इसलिये है कि--अश्वकः, उष्ट्रकः इत्यादि में लुप् न होवे ॥८१०॥

जीविकार्थे चापण्ये[1] ॥८११॥ —अ० ५ । ३ । ९९ ॥

यहां मनुष्यग्रहण की अनुवृत्ति पूर्व सूत्र से समझनी चाहिये, क्योंकि उत्तर सूत्र में भी जाती है ।

---

१. जीविका शब्द का अर्थ मुख्य करके जीवनोपाय करना है । इस प्रकरण में सिवाय प्रतिकृति और मनुष्य के दूसरे की अनुवृत्ति नहीं आती । यहां प्रयोजन यह है कि जिन स्त्री पुत्र आदि सम्बन्धी वा मित्रादिकों के साथ अत्यन्त प्रेम होता है, उनके वियोग में उनकी प्रतिकृति देखते और गुण कर्म तथा उपकार आदि का स्मरण करते हुए अपने चित्त में सन्तोष करते हैं । परन्तु इस प्रकरण में यह बात विचारना चाहिये कि संसार में जितने दृश्य पदार्थ हैं, उन सबकी प्रतिकृति होती है वा नहीं ? जो बहुतेरे घोड़े हाथी आदि जीवों की अतिदर्शनीय मृन्मयादि की प्रतिकृतियां बना बना कर बेचते हैं, वे जीविकार्थपण्य होते हैं । और जो बहुतेरे द्वीप द्वीपान्तर देश देशान्तरों

पण्य उसको कहते हैं कि जो बेचा जावे, जो पदार्थ बेचने के लिये न हो और उससे किसी प्रकार की जीविका होती होवे, वह पदार्थ वाच्य रहे, तो प्रतिकृति अर्थ में विहित प्रत्यय का लुप् हो जावे। जैसे—वसिष्ठस्य प्रतिकृतिर्वसिष्ठः; विश्वामित्रः; अर्जुनस्य

में पशु पक्ष्यादि तथा पति स्त्री पुत्रादि की प्रतिकृतियां रखते हैं, वे अपण्यजीविकार्थ अर्थात् बेचने के लिए न हों, किन्तु देख और दिखला के जीविका करते हों। परन्तु परमार्थ के साथ इस विषय का कुछ सम्बन्ध नहीं।

इसी सूत्र से बहुतेरे वैयाकरणों का यह अभिप्राय है कि—जीविका के लिए जो पदार्थ हो और वह बेचा न जावे, तो उस अर्थ में कन् प्रत्यय का लुप् हो जावे, और (लुम्मनुष्ये) इस सूत्र से मनुष्य शब्द का भी सम्बन्ध न करके, ब्रह्मा आदि देवताओं की मूर्त्तियाँ, जो कि मन्दिरों में बना बना कर रखते हैं, उनसे जीविका—धन का आगम—तो है परन्तु वे प्रतिमा बेचने के लिये नहीं हैं, इसलिये उन्हीं का ग्रहण होना चाहिए।

और इस सूत्र पर महाभाष्यकार ने भी लिखा है कि—जो धनार्थी लोग शिव आदि की प्रतिमा बना बना कर बेचते हैं, वहां लुप् नहीं पावेगा। क्योंकि सूत्रकार ने अपण्य शब्द पढ़ा है कि जो बेचने के लिये न हो। इस महाभाष्य से भी अपना ही अभिप्राय सिद्ध करते हैं, सो ठीक नहीं, क्योंकि यहां प्रतिकृति और मनुष्य शब्द ही की अनुवृत्ति है, अन्य की नहीं। देवता शब्द भी जहां चेतन व्यक्तियों के साथ सम्बद्ध होता है, वहां मनुष्यों ही की संज्ञा होती है। और वैदिक शब्द सब यौगिक ही हैं, देवता शब्द भी वैदिक है। जो इस सूत्र में मनुष्य शब्द की अनुवृत्ति जयादित्य आदि लोगों ने नहीं की, यह उनको भ्रम

प्रतिकृतिरर्जुनः; युधिष्ठिरः; रामः; कृष्णः; शिवः; विष्णुः; स्कन्दः; आदित्य इत्यादि। ये वसिष्ठ आदि मनुष्यों के विशेष नाम भूत भविष्यत् और वर्त्तमान तीनों काल में होते हैं।

है। क्योंकि वे लोग देवता शब्द को मनुष्य से व्यतिरिक्तार्थवाची समझते हैं, परन्तु सामान्य ग्रहण होने से जो जो प्रतिकृति जीविका के लिए हो और बेची न जावे, तो उस उस सबके अभिधेय में प्रत्यय का लुप् होना चाहिये।

और जहाँ कोई मनुष्य किन्हीं जीवों की प्रतिकृतियों को दिखा के सर्वत्र अपनी जीविका करता हो, वहां भी लुप् होना चाहिये। और पूजा का अर्थ भी आदर सत्कार ही होता है सो चेतन का होना चाहिए। फिर महाभाष्यकार ने लिखा है कि जो इस समय पूजा के लिये है, वहां लुप् होगा। इसका भी यही अभिप्राय है कि जो शिव आदि मनुष्य की प्रतिकृति पूजा सत्कार के लिए है, उनसे प्रत्यय का लुप् हो जावे। क्योंकि अच्छे पुरुषों को जो प्रतिकृति है उसके बेचने में सज्जन लोग बुराई समझते हैं।

देव और देवता शब्द से मनुष्यों के ग्रहण में प्रमाण—

'विश्वे देवास आगत शृणुतेम꣡ँ हवम् ॥' यह यजुर्वेद का प्रमाण है। 'विद्वाꣳसो हि देवाः ॥' यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है। 'मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्य्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव ॥' यह तैत्तिरीय आरण्यक का वाक्य है ॥

इत्यादि सब प्रमाणवचनों से विद्वद् व्यक्ति आदि का ग्रहण देव और देवता शब्द से होता है। इसलिये पाणिनि आदि ऋषि लोगों का अभिप्राय भी वेदों से विरुद्ध कभी न होना चाहिए। इस प्रकरण को पक्षपात छोड़ के वेदानुकूलता से सब सज्जन लोग विचारें ॥

यहां 'मनुष्य' ग्रहण की अनुवृत्ति इसलिए है कि—अश्वकं दर्शयति, यहां न हो। और 'अपण्य' ग्रहण इसलिये है कि—हस्तिकान् विक्रीणीते, यहां भी कन् का लुप् न हो ।।८११।।

समासाच्च तद्विषयात् ।। ८१२ ।। —अ० ५ । ३ । १०६ ।।

यहां तत् शब्द से पूर्वोक्त उपामावाचक शब्द लिया जाता है।

उपमार्थ में समास किये प्रातिपदिकों से दूसरे उपमार्थ में छ प्रत्यय होवे। जैसे—काकागमनमिव तालपतनमिव काकतालं काकतालमिव यत्कार्यं काकतालीयम्; अजाकृपाणीयम्; अन्धकवर्तकीयम् इत्यादि।

यहां कौवे का वृक्ष के नीचे आना और ताल के फल का गिरना एक काल में होने से उस फल से दब के मर जाना अथवा उस फल को खा के तृप्त होना दोनों अर्थों का सम्भव है। ऐसे ही संसार में जो कार्य हो, उस को 'काकतालीय न्याय' कहते हैं।

इस सूत्र में पहले उपमार्थ में समास और दूसरे में प्रत्यय की उत्पत्ति होती है ।।८१२।।

प्रत्नपूर्वविश्वेमात्थाल् छन्दसि ।। ८१३ ।।

—अ० ५ । ३ । १११ ।।

प्रत्न पूर्व विश्व और इम शब्दों से उपमार्थ में वेदविषयक थाल् प्रत्यय होवे। जैसे—प्रत्नथा; पूर्वथा; विश्वथा; इमथा ।।८१३।।

पूगाञ् ञ्योऽग्रामणीपूर्वात् ।। ८१४।।

—अ० ५ । ३ । ११२ ।।

यहां से उपमार्थ निवृत्त हुआ। अर्थ और कामों में आसक्त पुरुषों को 'पूग' कहते हैं।

ग्रामणी शब्द जिसके पूर्व न हो, ऐसे पूगवाची प्रातिपदिक से स्वार्थ में ञ्य प्रत्यय हो । जैसे—लौहध्वज्यः, लौहध्वज्यौ, लोहध्वजाः; शैब्यः, शैब्यौ, शिबयः; चातक्यः, चातक्यौ, चातकाः ।

यहां 'ग्रामणी पूर्व का निषेध' इसलिये है कि—देवदत्तो ग्रामणीरेषां त इमे देवदत्तकाः; यज्ञदत्तकाः इत्यादि से ञ्य प्रत्यय न होवे ।।८१४।।

व्रातच्फञोरस्त्रियाम् ।। ८१५ ।। —अ० ५ । ३ । ११३ ।।

जो पुरुष जीवों को मार मार के जीविका करें उनको 'व्रात' कहते हैं ।

व्रातवाची और च्फञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से स्वार्थ में ञ्य प्रत्यय हो, स्त्रीलिङ्ग को छोड़ के । जैसे—कापोतपाक्यः, कापोतपाक्यौ, कपोतपाकाः इत्यादि । च्फञन्त से—कौञ्जायन्यः, कौञ्जायन्यौ, कौञ्जायनाः इत्यादि ।

यहां 'स्त्रीलिङ्ग का निषेध' इसलिये है कि—कपोतपाकी; कौञ्जायनी, यहां ञ्य न होवे ।।८१५।।

ञ्यादयस्तद्राजाः ।। ८१६ ।। —अ० ५ । ३ । ११९ ।।

(पूगाञ्ञ्यो०) इस सूत्र में जो ञ्य प्रत्यय पढ़ा है, वहां से यहां तक बीच में जितने प्रत्यय हैं, उन सब की 'तद्राज' संज्ञा होती है ।

उसका प्रयोजन यही है कि बहुवचन में प्रत्यय का लुक् हो जाता है ।।८१६।।

।। इति पञ्चमाध्यायस्य तृतीयः पादः समाप्तः ।।

अथ चतुर्थः पादः—

पादशतस्य संख्यादेर्वीप्सायां वुन् लोपश्च ॥८१७॥

—अ० ५। ४। १॥

संख्या जिसके आदि में हो, ऐसे पाद और शतशब्दान्त प्रातिपदिक से वीप्सा अर्थ में वुन् प्रत्यय और पाद शत शब्दों के अन्त का लोप होवे। जैसे—द्वौ द्वौ पादौ ददाति द्विपदिकां ददाति; द्वे द्वे शते ददाति द्विशतिकां ददाति इत्यादि।

यहां भसंज्ञक प्रत्ययों के परे अन्त का लोप हो जाता, फिर 'लोप' ग्रहण इसलिये है कि—उस लोप के परनिमित्तक होने से स्थानिवद्भाव होकर पाद शब्द को पत् आदेश नहीं पावे। यह लोप परनिमित्त नहीं है, इस कारण स्थानिवद्भाव का निषेध होकर पत् आदेश हो जाता है।

इस सूत्र में पाद और शत शब्दों का ग्रहण किया है, परन्तु पाद शत शब्दों से अन्यत्र भी संख्यादि शब्दों से वीप्सा अर्थ में वुन् प्रत्यय होता है। जैसे—'द्विमोदकिकामाददाति' इत्यादि प्रयोगों का आश्रय लेकर महाभाष्यकार ने पाद शत ग्रहण की उपेक्षा की है ॥८१७॥

अषडक्षाशितङ्ग्वलङ्कर्मालम्पुरुषाध्युत्तरपदात्खः ॥८१८॥

—अ० ५। ४। ७॥

अषडक्ष, आशितङ्गु, अलङ्कर्म, अलम्पुरुष और अधि जिनका उत्तरपद हो, उन प्रातिपदिकों से स्वार्थ में ख प्रत्यय होवे। जैसे—अविद्यमानानि षट् अक्षीण्यस्य, इस प्रकार बहुव्रीहि समास किये पश्चात् अक्षि शब्द से समासान्त षच् प्रत्यय हो जाता है। उस अषडक्ष शब्द से ख प्रत्यय हुआ है। अषडक्षीणो मन्त्रः।

आशिता गावोऽस्मिन्नरण्ये आशितङ्गवीनमरण्यम्, यहां निपातन पूर्वपद को मुक् का आगम हुआ है। अलङ्कर्मीणम्; अलम्पुरुषीणम्; कार्य्याधीनः; राजाधीनः इत्यादि ।।८१८।।

विभाषाऽञ्चेरदिक्स्त्रयाम् ।। ८१९ ।।

—अ० ५ । ४ । ८ ।।

यहां अप्राप्तविभाषा है, क्योंकि ख प्रत्यय किसी से प्राप्त नहीं है।

क्विप् प्रत्ययान्त अञ्चु जिसके अन्त में हो, उस प्रातिपदिक से स्त्रीलिंग दिशा अर्थ को छोड़ के स्वार्थ में विकल्प से ख प्रत्यय होवे। जैसे—प्राक्, प्राचीनम्; अर्वाक्, अर्वाचीनम्।

'दिशा स्त्रीलिङ्ग का निषेध' इसलिये है कि—प्राची दिक्; प्रतीची दिक्। 'दिशा' का ग्रहण इसलिये है कि—प्राचीना ब्राह्मणी; अर्वाचीना शिखा इत्यादि से छ प्रत्यय न होवे ।।८१९।।

स्थानान्ताद्विभाषा सस्थानेनेति चेत् ।। ८२० ।।

—अ० ५ । ४ । १० ।।

तुल्यता अर्थ में स्थानान्त प्रातिपदिक से विकल्प करके छ प्रत्यय होवे स्वार्थ में। जैसे—पित्रा तुल्यः पितृस्थानीयः, पितृस्थानः; मातृस्थानीयः, मातृस्थानः; भ्रातृस्थानीयः, भ्रातृस्थानः; राजस्थानीयः, राजस्थानः इत्यादि।

यहां 'स्थान' ग्रहण इसलिये है कि—गोस्थानम्; अश्वस्थानम्, यहां न हो ।।८२०।।

किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे ।। ८२१ ।।

—अ० ५ । ४ । ११ ।।

किम्, एकारान्त निपात, तिङन्त और अव्यय शब्दों से परे जो घ प्रत्यय तदन्त प्रातिपदिकों से अद्रव्य—क्रिया और गुण—की अधिकता में आमु प्रत्यय होवे।

यद्यपि गुण कर्मों के विना केवल द्रव्य की कुछ उन्नति नहीं होती, तथापि क्रिया और गुणों की उन्नति की जब द्रव्य में विवक्षा होती है, उस द्रव्यस्थ प्रकर्ष का निषेध यहां समझना चाहिए। जैसे—किन्तराम् किन्तमाम्; पूर्वाह्णेतराम्, पूर्वाह्णेतमाम्; पठतितराम्, पठतितमाम्, उच्चैस्तराम्, उच्चैस्तमाम् इत्यादि।

यहां आमु प्रत्यय में उकारानुबन्ध मकार की रक्षा के लिये है ॥८२१॥

णचः स्त्रियामञ् ॥ ८२२ ॥ —अ० ५। ४। १४॥

स्त्रीलिङ्ग में जो कृदन्त णच् प्रत्यय होता है, तदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्गविषयक स्वार्थ में अञ् प्रत्यय होवे। जैसे—व्यावक्रोशी; व्यावहासी इत्यादि ॥८२२॥

संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच् ॥ ८२३ ॥
—अ ५। ४। १७॥

एक ही जिनका कर्त्ता हो, ऐसी एक ही प्रकार की क्रियाओं के वार वार गणने अर्थ में वर्त्तमान संख्यावाची शब्दों से स्वार्थ में कृत्वसुच् प्रत्यय होवे। जैसे—पञ्च वारान् भुङ्क्ते पञ्चकृत्वो भुङ्क्ते; सप्तकृत्वः; अष्टकृत्वः; दशकृत्वः इत्यादि।

यहां 'संख्या' ग्रहण इसलिए है कि—भूरीन् वारान् भुङ्क्ते, यहां प्रत्यय न हो। और वार वार होना क्रिया का ही हो सकता है, द्रव्य गुण का नहीं, फिर यहां 'क्रिया' ग्रहण इसलिये है कि—

उत्तर सूत्रों में जहां क्रिया ही गिनी जाती और अभ्यावृत्ति नहीं होती, वहां भी हो जावे। और 'अभ्यावृत्ति' ग्रहण इसलिये है कि—क्रियामात्र के गणने में न हो। जैसे—पञ्च पाकाः; दश पाकाः ॥८२३॥

द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच् ॥८२४॥ —अ० ५। ४। १८॥

क्रिया के वार वार गणने अर्थ में वर्त्तमान संख्यावाची द्वि त्रि और चतुर् शब्दों से कृत्वसुच् का बाधक सुच् प्रत्यय होवे। जैसे—द्विः पठति; त्रिः स्नाति; चतुः पिबति इत्यादि ॥८२४॥

एकस्य सकृच्च ॥८२५॥ —अ० ५। ४। १९॥

क्रिया की संख्या में वर्त्तमान एक शब्द से कृत्वसुच् का अपवाद सुच् प्रत्यय और एक शब्द को सकृत् आदेश होवे। जैसे—सकृतदधीते; सकृद्दाति; सकृत् कन्या प्रदीयते इत्यादि ॥८२५॥

तत्प्रकृतवचने मयट् ॥८२६॥ —अ० ५। ४। २१॥

जिस शब्द से प्रत्ययार्थ की विवक्षा हो, उसी के निरन्तर कहने अर्थात् जात्यन्तर के मेल की निवृत्ति करने अर्थ में वर्त्तमान प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से स्वार्थ में मयट् प्रत्यय होवे। जैसे—आनन्दमयं ब्रह्म—अर्थात् ईश्वर में दुःख का लेश भी नहीं है; अन्नमयम्; प्राणमयम्; मनोमयम् इत्यादि ॥८२६॥

अनन्तावसथेतिहभेषजाञ्ञ्यः ॥८२७॥

—अ० ५। ४। २३॥

अनन्त, आवसथ, इतिह और भेषज शब्दों से स्वार्थ में ञ्य प्रत्यय होवे। जैसे—अनन्त एव आनन्त्यम्; आवसथ एव आवसथ्यम्; इतिह एव ऐतिह्यम्; भेषजमेय भैषज्यम् ॥८२७॥

देवतान्तात्तादर्थ्ये यत् ॥ ८२८ ॥ —अ० ५ । ४ । २४ ॥

देवता शब्द जिसके अन्त में हो, उस चतुर्थीसमर्थ प्रातिपदिक से, प्रत्ययार्थ प्रकृत्यर्थ के लिये होवे, तो यत् प्रत्यय होवे। जैसे—अग्निदेवतायै इदम् अग्निदेवत्यम्; पितृदेवत्यम्; मातृदेवत्यम्; वायुदेवत्यम् इत्यादि ॥८२८॥

अतिथेर्ञ्यः ॥ ८२९ ॥ —अ० ५ । ४ । २६ ॥

तादर्थ्य अर्थ में, चतुर्थीसमर्थ अतिथि प्रातिपदिक से ञ्य प्रत्यय हो। जैसे—अतिथये इदमातिथ्यम् ॥८२९॥

देवात्तल् ॥ ८३० ॥ —अ० ५ । ४ । २७ ॥

देव शब्द से स्वार्थ में तल् प्रत्यय होवे। जैसे—देव एव देवता ॥८३०॥

लोहितान्मणौ ॥ ८३१ ॥ —अ० ५ । ४ । ३० ॥

मणिवाची लोहित शब्द से स्वार्थ में कन् प्रत्यय हो। जैसे—लोहितो मणिः लोहितकः।

'मणि' ग्रहण इसलिये है कि—लोहितः, यहां प्रत्यय न हो ॥८३१॥

वा०—लोहिताल्लिङ्गबाधनं वा ॥ ८३२ ॥

लोहित शब्द से प्रतिपदविधि में कन् प्रत्यय के बलवान् होने से स्त्रीलिङ्ग में तकार को नकार आदेश नहीं प्राप्त है, इसलिये यह वार्त्तिक पढ़ा है कि—

लोहित शब्द से कन् प्रत्यय नकारादेश का बाधक विकल्प करके होवे। जैसे—लोहिनिका, लोहितिका ॥ ८३२ ॥

वा०—अक्षरसमूहे छन्दसि यत उपसंख्यानम् ॥८३३॥

अक्षरों के समूह अर्थ में वेदविषय में यत् प्रत्यय होवे। जैसे—एष वै सप्तदशाक्षरश्छन्दस्यः प्रजापतिः, यहां छन्दस्य शब्द में यत् प्रत्यय हुआ है ॥ ८३३ ॥

वा०—छन्दसि बहुभिर्वसव्यैरुपसंख्यानम् ॥ ८३४ ॥

वेद में वसु शब्द से यत् प्रत्यय होवे। जैसे—हस्तैः पृणस्व बहुभिर्वसव्यैः, यहां वसव्य शब्द में यत् प्रत्यय हुआ है ॥ ८३४ ॥

वा०—अपस्, ओक, कवि, उदक, वर्चस्, निष्केवल, उक्थ, जन इत्येतेभ्यश्च वा ॥ ८३५ ॥

यहां चकार से छन्दसि और यत् की अनुवृत्ति आती है।

इन अपस् आदि प्रातिपदिकों से वेद में स्वार्थिक यत् प्रत्यय विकल्प करके होवे। जैसे—अपस्यो वसानाः, अपो वसानाः; स्व ओक्ये, स्व ओकः; कव्योऽसि, कविरसि; [उदक्यम्, उदकम्;] वर्चस्यः, वर्चः; निष्केवल्यम्, निष्केवलम्; उक्थ्यम्, उक्थम्; जन्यम्; जनम् ॥ ८३५ ॥

वा०—समादावतुः ।। ८३६ ।।

सम शब्द से स्वार्थ में आवतु प्रत्यय होवे। जैसे—समावद्वसति; समावद् गृह्णाति इत्यादि ।। ८३६ ।।

वा०—नवस्य नू त्नप्तनप्खाश्च ।। ८३७ ।।

नव शब्द को नू आदेश और उससे स्वार्थ में त्नप्, तनप् तथा ख प्रत्यय होवें। जैसे—नूत्नम्; नूतनम्; नवीनम् ।। ८३७ ।।

वा०—नश्च पुराणे प्रात् ।। ८३८ ।।

प्राचीन अर्थ में वर्त्तमान प्र शब्द से न प्रत्यय, और चकार से त्नप् तनप् और ख प्रत्यय भी हों। जैसे—प्रणम्; प्रत्नम्; प्रतनम्; प्रीणम् ।। ८३८ ।।

तद्युक्तात्कर्मणोऽण् ।। ८३९ ।। —अ० ५ । ४ । ३६ ।।

यहां पूर्व सूत्र से अव्याहृतवाणी की अनुवृत्ति आती है।

व्याहृतवाणी के युक्त—योग्य—कर्म शब्द से स्वार्थ में अण् प्रत्यय होवे। जैसे—कर्मैव कार्म्मणम्। वाणी को सुन के वैसे ही जो कर्म किया जावे उसको 'कार्मण' कहते हैं ।। ८३९ ।।

वा०—अण्प्रकरणे कुलालवरुडनिषादचण्डालामित्रेभ्यश्छन्दस्युपसंख्यानम् ।। ८४० ।।

कुलाल, वरुड, निषाद, चण्डाल और अमित्र प्रातिपदिकों से भी वेद में अण् प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे—कौलालः; वारुडः; नैषादः; चाण्डालः; आमित्रः ।। ८४० ।।

वा०—भागरूपनामभ्यो धेयः ।। ८४१ ।।

भाग, रूप और नाम शब्दों से धेय प्रत्यय हो। जैसे—भागधेयम्; रूपधेयम्; नामधेयम् ।। ८४१ ।।

वा०—मित्राच्छन्दसि धेयः ।। ८४२ ।।

मित्र शब्द से वेदविषयक स्वार्थ में धेय प्रत्यय हो। जैसे—मित्रधेये यतस्व ।। ८४२ ।।

वा०—अण् मित्राच्च ।। ८४३ ।।

मित्र और अमित्र शब्दों से स्वार्थ में अण् प्रत्यय भी हो। जैसे—मित्रमेव मैत्रम् । अमित्र एव आमित्रः ।। ८४३ ।।

वा०—सान्नाय्यानुजावरानुषूकच्चातुष्प्राश्यराक्षोघ्नवैयात-वैकृतवारिवस्कृताग्रायणाग्रहायणसान्तपनानि निपात्यन्ते ।। ८४४ ।।

सान्नाय्य आदि शब्द स्वार्थिक अण्प्रत्ययान्त लोक वेद में सर्वत्र निपातन किये हैं। जैसे—सान्नाय्यः; आनुजावरः, आनुषूकः; चातुष्प्राश्यः; राक्षोघ्नः; वैयातः; वैकृतः; वारिवस्कृतः; आग्रायणः; आग्रहायणः; सान्तपनः ।। ८४४ ।।

वा०—आग्नीध्रसाधारणादञ् ।। ८४५ ।।

आग्नीध्र और साधारण शब्दों से स्वार्थ में अञ् प्रत्यय हो। जैसे—आग्नीध्रम्; साधारणम् ।। ८४५ ।।

वा०— अपवसमरुद्‌भ्यां छन्दस्यञ् ।। ८४६ ।।

अपवस और मरुत् शब्दों से स्वार्थ में अञ् प्रत्यय हो। जैसे—आपवसे वर्द्धन्तम्; मारुतं शब्दः ।। ८४६ ।।

वा०—नवसूरमर्त्तयविष्ठेभ्यो यत् ॥८४७॥

यहां भी पूर्व वार्त्तिक से छन्द की अनुवृत्ति समझनी चाहिये।

नव, सूर, मर्त्त, और यविष्ठ शब्दों से स्वार्थ में यत् प्रत्यय होवे। जैसे—नव्यः; सूर्य्यः; मर्त्यः; यविष्ठ्यः; ॥८४७॥

वा०—क्षेमाद्यः ॥८४८॥

क्षेम शब्द से स्वार्थ में य प्रत्यय हो। जैसे—क्षेम्यस्तिष्ठन् प्रतरणः सुवीरः, यहां यत् और य प्रत्यय में केवल स्वर का भेद है, रूप भेद नहीं ॥ ८४८ ॥

ओषधेरजातौ ॥८४९॥ —अ० ५। ४। ३७॥

ओषधि शब्द से जाति अर्थ न होवे, तो स्वार्थ में अण् प्रत्यय हो। जैसे—औषधं पिबति, औषधं ददाति इत्यादि ॥ ८४९ ॥

मृदस्तिकन् ॥८५०॥ —अ० ५। ४। ३९॥

मृत् शब्द से स्वार्थ में तिकन् प्रत्यय हो। जैसे—मृदेव मृत्तिका ॥ ८५० ॥

सस्नौ प्रशंसायाम् ॥८५१॥ —अ० ५। ४। ४०॥

प्रशंसा अर्थ में वर्त्तमान मृत् प्रातिपदिक से स्वार्थ में स और स्न प्रत्यय हों। जैसे—प्रशस्ता मृत् मृत्सा; मृत्स्ना ॥ ८५१ ॥

बह्वल्पार्थाच्छस्कारकादन्यतरस्याम् ॥८५२॥

—अ० ५। ४। ४२॥

यहां शस् प्रत्यय की किसी सूत्र से प्राप्ति न होने से यह अप्राप्तविभाषा समझनी चाहिये।

कारकवाची बहु अल्प और इनके अर्थ के शब्दों से विकल्प करके शस् प्रत्यय होवे ।

किसी कारक का यहां विशेष निर्देश नहीं किया, इससे कर्मादि सब कारकों का ग्रहण होता है। जैसे—बहूनि ददाति, बहुशो ददाति; अल्पं ददाति, अल्पशो ददाति; बहुभिर्ददाति, बहुशो ददाति; अल्पेन, अल्पशो ददाति; बहुभ्यः, बहुशः; अल्पशः; बहूनां बहुषु वा बहुशः; अल्पस्य, अल्पे वा अल्पशः। इनके अर्थ के—भूरिशो ददाति; स्तोकशो ददाति इत्यादि।

यहां 'बहु तथा अल्पार्थों का' ग्रहण इसलिये है कि—गां ददाति; अश्वं ददाति इत्यादि से शस् प्रत्यय न होवे ।। ८५२ ।।

वा०—बह्वल्पार्थान्मङ्गलामङ्गलवचनम् ।।८५३।।

बहु और अल्प शब्दों से जो प्रत्यय विधान किया है, वहां बहु से मङ्गल और अल्प शब्द से अमङ्गल अर्थ में होवे ।

यह वार्त्तिक सूत्र का शेष है, इसलिये उक्त उदाहरण ही समझने चाहिये। अर्थात्—बहुशो ददाति, यह प्रयोग अनिष्ट के बहुत देने में न होवे। और—अल्पशो ददाति, यह भी इष्ट के देने में प्रयोग न किया जावे ।। ८५३ ।।

प्रतियोगे पञ्चम्यास्तसिः ।।८५४।।

—अ० ५ । ४ । ४४ ।।

कर्मप्रवचनीयसंज्ञक प्रति शब्द के योग में जहां पञ्चमी विभक्ति की है, उस विभक्त्यन्त प्रातिपदिक से तसि प्रत्यय होवे। जैसे—प्रद्युम्नो वासुदेवतः प्रति; अभिमन्युरर्जुनतः प्रति ।

यहां पूर्व से विकल्प की अनुवृत्ति चली आने से वासुदेवात्; अर्जुनात् ऐसा भी प्रयोग होता है ।। ८५४ ।।

वा०—तसिप्रकरणे आद्यादीनामुपसंख्यानम् ।।८५५।।

इस प्रकरण में आद्यादि शब्दों से तसि प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे—आदौ आदितः; मध्यतः; अन्ततः; पार्श्वतः; पृष्ठतः इत्यादि ।। ८५५ ।।

कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्त्तरि च्विः ।।८५६।।

—अ० ५ । ४ । ५० ।।

संपूर्वक पद धातु के कर्त्ता अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से कृ, भू और अस्ति धातुओं के योग में च्वि प्रत्यय होवे ।। ८५६ ।।

वा०—च्विविधावभूततद्भावग्रहणम् ।।८५७।।

यह वार्त्तिक सूत्र का शेष समझना चाहिये। जो पदार्थ प्रथम कारण रूप से अप्रसिद्ध हो, और पीछे कार्य्यरूप से प्रकट किया जावे, उसको 'अभूततद्भाव' कहते हैं।

इस अभूततद्भाव अर्थ में उक्त सूत्र से च्वि प्रत्यय कहा है, सो होवे। जैसे—अशुक्लः शुक्लः सम्पद्यते तं करोति शुक्लीकरोति, अर्थात् जो पदार्थ प्रथम से मलीन है, उसको शुद्ध करता है, शुक्लीभवति; शुक्लीस्यात्; कठिनीकरोतिः कठिनीभवति; कठिनीस्यात्; घटीकरोति; घटीभवति; घटीस्यात् इत्यादि।

प्रयोजन यह है कि जो पदार्थ अपनी प्रथमावस्था में जिस स्वरूप से वर्त्तमान हो, उसी अवस्था के साथ इस प्रत्ययार्थ की विवक्षा समझनी चाहिये। और इस प्रत्यय के विना लोक में सिद्ध पदार्थों का कहना बन सकता है, कि जो पदार्थ जैसा हो उसको वैसे ही स्वरूप से वर्णन करें।

यहां 'अभूततद्भाव' ग्रहण इसलिये है कि—सम्पद्यन्ते यवाः; सम्पद्यन्ते शालयः, यहां च्वि प्रत्यय न होवे। 'कृ भू अस्ति धातुओं का योग' इसलिये कहा है कि—अशुक्लः शुक्लो जायते, यहां न हो। और 'संपूर्वक पद धातु के कर्त्ता' का ग्रहण इसलिये है कि—गृहे संयुज्यते, यहां भी च्वि प्रत्यय न होवे ।। ८५७ ।।

वा०—समीपादिभ्य उपसंख्यानम् ।।८५८।।

समीप आदि शब्दों से भी पूर्वोक्त अर्थों में च्वि प्रत्यय होवे। जैसे—असमीपस्थं समीपस्थं भवति समीपीभवति; अभ्याशीभवति; अन्तिकीभवति; सविधीभवति इत्यादि।

यहाँ प्रकृति से विकार का होना नहीं है, इस कारण प्रत्यय की प्राप्ति नहीं है ।। ८५८ ।।

विभाषा साति कार्त्स्न्ये ।।८५९।।

—अ० ५ । ४ । ५२ ।।

यहां च्वि प्रत्यय को छोड़ के पूर्व सूत्र से सब पदों की अनुवृत्ति आती है।

संपूर्वक पद धातु के कर्त्ता में वर्त्तमान प्रातिपदिकों से कृ भू और अस्ति धातु का योग हो, तो अभूततद्भाव अर्थ में संपूर्णता विदित होवे, तो साति प्रत्यय विकल्प करके हो। जैसे—भस्मसाद्भवति काष्ठम्, भस्मसात्करोति, भस्मसात्स्यात्, भस्मीभवति, भस्मीस्यात्; उदकसाद्भवति लवणम्, उदकीभवति लवणम् इत्यादि। प्रकृति संपूर्ण विकार रूप हो जावे।

यह सूत्र च्वि प्रत्यय का अपवाद और यहाँ अप्राप्तविभाषा है। पक्ष में च्वि प्रत्यय भी हो जाता है। यहां 'संपूर्णता' ग्रहण

इसलिये है कि—

एकदेशेन पटः शुक्लीभवति, यहां प्रत्यय न होवे ॥ ८५९ ॥

देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्येभ्यो द्वितीयासप्तम्योर्बहुलम् ॥८६०॥

—अ० ५ । ४ । ५६ ॥

यहां से साति प्रत्यय निवृत्त हुआ, और त्रा प्रत्यय की अनुवृत्ति आती है ।

द्वितीया और सप्तमीसमर्थ देव, मनुष्य, पुरुष, पुरु और मर्त्य प्रातिपदिकों से बहुल करके स्वार्थ में त्रा प्रत्यय होवे । जैसे—देवान् सत्करोति, देवत्रा सत्करोति; देवेषु वसति, देवत्रा वसति; मनुष्यान् गच्छति, मनुष्यत्रा गच्छति; मनुष्येषु वसति, मनुष्यत्रा वसति; पुरुषं ध्यायति; पुरुषत्रा ध्यायति; पुरून् गृह्णाति, पुरुत्रा गृह्णाति; पुरुषु वसति, पुरुत्रा वसति; मर्त्यान् मर्त्येषु वा मर्त्यत्रा इत्यादि ।

यहां 'बहुल' शब्द के ग्रहण से अनुक्त शब्दों से भी त्रा प्रत्यय हो जावे । जैसे—बहुत्रा जीवतो मनः इत्यादि ॥ ८६० ॥

अव्यक्तानुकरणाद्द्व्यजवरार्द्धादनितौ डाच् ॥८६१॥

—अ० ५ । ४ । ५७ ॥

यहां कृ भू और अस्ति धातुओं के योग की अनुवृत्ति आती है । जिस ध्वनि में अकारादि वर्ण पृथक् पृथक् स्पष्ट नहीं जाने जाते उसको 'अव्यक्त' शब्द कहते हैं । उसी शब्द के अनुसार जो जनाया जावे कि वह अव्यक्त शब्द ऐसा हुआ, उसको 'अव्यक्तानुकरण' कहते हैं ।

इति शब्द जिससे परे न हो, और जिसके एक अर्द्ध भाग में दो अच् हों, ऐसे अव्यक्तानुकरण प्रातिपदिक से कृ भू और अस् धातु के योग में डाच् प्रत्यय होवे। जैसे—पटपटा करोति; पटपटा भवति; पटपटा स्यात्; दमदमा करोति; दमदमा भवति; दमदमा स्यात्; बलबला करोति; बलबला भवति; बलबला स्यात् इत्यादि।

यहां 'अव्यक्तानुकरण' ग्रहण इसलिये है कि—दृषत्करोति, दरत्करोति इत्यादि में डाच् प्रत्यय न हो। 'द्व्यजवरार्द्ध' ग्रहण इसलिये है कि—श्रत्करोति, यहां एकाच् में न हो। और 'अवर' शब्द का ग्रहण इसलिये है कि—खरट खरट करोति, यहां अर्द्ध भाग में तीन अच् हैं, इससे डाच् प्रत्यय नहीं होता। और 'इतिपरक का निषेध' इसलिये है कि—पटिति करोति, यहां इति शब्द से परे डाच् प्रत्यय न हो।

(डाचि बहुलं द्वे भवतः) इस वार्त्तिक में विषयसप्तमी मान के डाच् प्रत्यय के होने की विवक्षा में ही द्विर्वचन हो जाता है, जो कदाचित् ऐसा न समझें तो जिसके अवर अर्द्ध भाग में दो अच् हों, यह कहना ही न बने। डाच् प्रत्यय में डकार का लोप होकर डित् मान के टिलोप और चकार अनुबन्ध से अन्तोदात्त-स्वर होता है ॥ ८६१ ॥

कृञो द्वितीयतृतीयशम्बबीजात्कृषौ ॥८६२॥

—अ० ५। ४। ५८ ॥

यहां कृञ् धातु का ग्रहण भू और अस् धातु की निवृत्ति के लिये है।

द्वितीय तृतीय शम्ब और बीज प्रातिपदिक से खेती अर्थ अभिधेय हो, तो कृञ् धातु के योग में डाच् प्रत्यय होवे।

जैसे—द्वितीया करोति, दूसरी वार खेत को जोतता है; तृतीया करोति, तीसरी वार जोतता है; शम्बा करोति, सीधा जोत के फिर तिरछा जोतता है; बीजा करोति, बीज बोने के साथ ही जोतता है।

यहां 'कृषि' ग्रहण इसलिये है कि—द्वितीयं करोति पादम्, यहां डाच् प्रत्यय न होवे ।८६२।।

संख्यायाश्च गुणान्तायाः ।।८६३।।

—अ० ५ । ४ । ५९ ।।

यहां कृञ् धातु और कृषि अर्थ दोनों की अनुवृत्ति चली आती है।

गुण शब्द जिसके अन्त में हो, ऐसे संख्यावाची प्रातिपदिक से कृषि अर्थ में कृ धातु के योग में डाच् प्रत्यय हो। जैसे—द्विगुणं विलेखनं क्षेत्रस्य करोति द्विगुणा करोति क्षेत्रम्; त्रिगुणा करोति इत्यादि।

यहां 'कृषि' ग्रहण इसलिये है कि—द्विगुणां करोति रज्जुम्; यहां डाच् प्रत्यय न हो। पूर्व सूत्र में द्वितीय तृतीय शब्दों के साथ इस सूत्र का शब्द भेद ही ज्ञात होता है, अर्थभेद नहीं ।।८६३।।

समयाच्च यापनायाम् ।।८६४।। —अ० ५ । ४ । ६० ।।

यहां कृषि की अनुवृत्ति नहीं आती, परन्तु कृञ् धातु की चली आती है।

करने योग्य कर्मों के अवसर मिलने को 'समय' कहते हैं, उस समय के यापना=अतिक्रमण अर्थ में समय शब्द से कृञ् धातु के योग में डाच् प्रत्यय होवे। जैसे—समया करोति, कालक्षेप करता है।

यहां 'यापना' ग्रहण इसलिये है कि—समयं करोति मेघः, यहाँ डाच् प्रत्यय न हो ॥८६४॥

मद्रात्परिवापणे ॥८६५॥ —अ० ५ । ४ । ६७ ॥

मङ्गलवाची मद्र शब्द से परिवापण=मुण्डन अर्थ में कृञ् धातु का योग होवे, तो डाच् प्रत्यय हो । [जैसे—] मङ्गलं मुण्डनं करोति मद्राकरोति ।

यहाँ परिवापण' इसलिए कहा है कि—मद्रं करोति, यहाँ डाच् प्रत्यय न हो ॥८६५॥

वा०—भद्राच्च ॥८६६॥

भद्र शब्द से भी परिवापण अर्थ में कृञ् धातु का योग हो, तो डाच् प्रत्यय हो । जैसे—भद्रा करोति नापितः कुमारम् ।

यहाँ भी परिवापण अर्थ से पृथक्—भद्रं करोति, यही प्रयोग होता है ॥८६६॥

॥ इति पञ्चमाध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्त ॥
[इति पञ्चमाध्यायः समाप्तः]

नस्तद्धिते ।८६७॥ —अ० ६ । ४ । १४४ ॥

तद्धितसंज्ञक प्रत्यय परे हों, तो नकारान्त भसंज्ञक अङ्ग के टिभाग का लोप होवे । जैसे—अग्निशर्म्मणोऽपत्यमाग्निशर्मिः; औडुलोमिः इत्यादि, यहाँ अग्निशर्म्मन् आदि शब्दों का बाह्वादिगण में पाठ होने से इञ् प्रत्यय हुआ है ।

यहां 'नान्त' का ग्रहण इसलिये है कि—सात्वतः; यहां तकारान्त के टिभाग का लोप न होवे। और 'तद्धित' ग्रहण इसलिये है कि—शर्म्मणा, शर्म्मणे इत्यादि प्रयोगों में लोप न हो ॥८६७॥

वा०—नांतस्य टिलोपे सब्रह्मचारिपीठसर्पिकलापिकौथुमितैतिलिजाजलिलाङ्गलिशिलालिशिखण्डिसूकरसद्मसुपर्वणामुपसंख्यानम् ॥ ८६८॥

यहां इन्नन्त और अन्नन्त शब्दों में आगामी सूत्रों से प्रकृतिभाव प्राप्त है, उसका पुरस्तात् अपवाद यह वार्त्तिक है।

तद्धित प्रत्ययों के परे सब्रह्मचारिन् आदि भसंज्ञक नकारान्त प्रातिपदिकों के टिभाग का लोप होवे। जैसे—सब्रह्मचारिण इमे छात्राः सब्रह्मचाराः—यहाँ सम्बन्धसामान्य में शैषिक अण् प्रत्यय हुआ है; पीठसर्प्पिण इमे छात्राः पैठसर्प्पाः—यहाँ भी पूर्व के समान अण्; कलापिना प्रोक्तमधीयते कालापाः—यहाँ (कलापिनोऽण्) इस सूत्र से प्रोक्त अर्थ में अण्; कौथुमिना प्रोक्तमधीयते कौथुमाः—यहाँ भी पूर्ववत् अण् जानो।

तैतिलिनामकं ग्रन्थमधीयते विदुर्वा तैतिलाः; जाजलाः; लाङ्गलाः; शैलालाः; शैखण्डाः; सूकरसद्मना प्रोक्तमधीयते सौकरसद्माः; सुपर्वणा प्रोक्तमधीयते सौपर्वाः—यहां तैतिलि आदि ग्रन्थवाची शब्दों से शैषिक प्रोक्त अर्थ में वृद्ध होने से छ प्रत्यय प्राप्त है, इसलिये अधीत वेद अर्थ में अण् समझना चाहिए। और सूकरसद्मन् तथा सुपर्वन् शब्दों से वृद्धसंज्ञा के न होने से प्रोक्तार्थ अण् प्रत्यय होता है ॥८६८॥

वा०—चर्मणः कौश उपसंख्यानम् ॥८६९॥

कोश = तलवार का घर अर्थ हो, तो तद्धितसंज्ञक प्रत्ययों के परे होते चर्मन् शब्द के टिभाग का लोप होवे। जैसे—चर्म्मणो विकारः कोशः चार्मः कोशः।

जहाँ कोश अर्थ न हो वहाँ—चार्मणः, प्रयोग होगा ॥८६९॥

वा०—अश्मनो विकार उपसंख्यानम् ॥८७०॥

विकार अर्थ में तद्धित प्रत्यय परे हों, तो पाषाणवाची अश्मन् शब्द के टिभाग का लोप हो। जैसे—अश्मनो विकार आश्मः।

जहाँ विकार अर्थ न हो वहाँ—आश्मनः, ऐसा ही रहे ॥८७०॥

वा०—शुनः संकोच उपसंख्यानम् ॥८७१॥

कुत्ते के वाची श्वन् शब्द के टिभाग का लोप हो, संकोच अर्थ अभिधेय रहे तो। [जैसे—] संकुचितः श्वा शौवः। इस श्वन् शब्द का द्वारादिगण में पाठ होने से वकार से पूर्व ऐच् का आगम हो जाता है।

और संकोच अर्थ से अन्यत्र—शौवनः, ऐसा ही प्रयोग होगा ॥८७१॥

वा०—अव्ययानां च सायम्प्रातिकाद्यर्थम् ॥८७२॥

तद्धितसंज्ञक प्रत्ययों के परे सायम्प्रातिक आदि शब्दों के सिद्ध होने में लिये भसंज्ञक अव्यय शब्दों के टिभाग का भी लोप कहना चाहिये। जैसे—सायम्प्रातर्भवः सायम्प्रातिकः; पौनःपुनिकः इत्यादि।

यहां द्वन्द्वसंज्ञक अव्ययों से ठञ् होता है। शाश्वतिक शब्द में निपातन मान के टिलोप नहीं होता। (येषां च विरोधः शाश्वतिकः) जिन अव्यय शब्दों में अविहित टिलोप दीखता है, वहां वैसे ही अव्ययों में समझना चाहिये। क्योंकि शाश्वतम् इत्यादि में द्वन्द्व किये अव्यय और ठञ् प्रत्यय दोनों ही नहीं, इससे लोप नहीं होता ॥ ८७२ ॥

अह्नष्टखोरेव ॥ ८७३ ॥ —अ० ६ । ४ । १४५ ॥

यह सूत्र नियमार्थ है। ट और ख इन्हीं दोनों प्रत्ययों के परे अहन् शब्द के टिभाग का लोप होवे; अन्यत्र प्रकृतिभाव ही हो जावे। जैसे—द्वे अहनी समाहृते द्व्यहः; त्र्यहः, यहां समासान्त टच् प्रत्यय हुआ है; द्वे अहनी अधीष्टो भृतो भूतो भावी वा द्व्यहीनः; त्र्यहीनः; अह्नां समूहोऽहीनः क्रतुः।

यहां 'टिलोप' का नियम इसलिये है कि—अह्ना निर्वृत्त-माह्निकम्, यहां नियम के होने से टिलोप न होवे ॥ ८७३ ॥

ओर्गुणः ॥ ८७४ ॥ —अ० ६ । ४ । १४६ ॥

तद्धितसंज्ञक प्रत्यय परे हों, तो उवर्णान्त भसंज्ञक प्रातिपदिकों को गुण होवे। जैसे—बभ्रोर्गोत्रापत्यं बाभ्रव्यः; माण्डव्यः; शङ्कवे हितं शङ्कव्यं दारु; पिचव्यः कार्पासः; कमण्डलव्या मृत्तिका; परशव्यमयः; औपगवः; कापटवः इत्यादि।

पूर्वलिखित तद्धितप्रत्ययविधान प्रकरण में सर्वत्र गुण तथा अन्य कार्य जो जो यहां कहें, समझने चाहियें। और इस सूत्र को इसी ग्रन्थ के पृष्ठ ५० में भी लिख चुके हैं, परन्तु विशेष व्याख्यानार्थ यहां लिखना आवश्यक समझा गया ॥ ८७४ ॥

ढे लोपोऽकद्र्वाः ॥ ८७५ ॥ —अ० ६ । ४ । १४७ ॥

तद्धितसंज्ञक ढ प्रत्यय परे हो, तो कद्रू शब्द को छोड़ के भसंज्ञक प्रातिपदिक के उवर्ण का लोप होवे । जैसे—कमण्डल्वा अपत्यं कामण्डलेयः; शैतिवाहेयः; जाम्बेयः; माद्रवाहेयः इत्यादि ।

यहां 'कद्रू शब्द का निषेध' इसलिये है कि—काद्रवेय ऋषिः, यहां लोप न हो, किन्तु पूर्व सूत्र से गुण हो जावे । और यह लोप गुण का ही अपवाद है ।। ८७५ ।।

यस्येति च ॥ ८७६ ॥ —अ० ६ । ४ । १४८ ॥

यहां तद्धित की अनुवृत्ति के लिये चकार पढ़ा है ।

तद्धितसंज्ञक और ईकार प्रत्यय परे हों, तो इवर्णान्त अवर्णान्त भसंज्ञक प्रातिपदिक का लोप हो । जैसे—इवर्णान्त का लोप ईकार के परे—दक्षस्यापत्यं स्त्री दाक्षी; प्लाक्षी इत्यादि ।

यहां जो सवर्णदीर्घ एकादेश मान लेवें तो—हे दाक्षी, यहां सवर्णदीर्घ एकादेश वर्णकार्य से सम्बुद्धि में ह्रस्व होना अङ्गकार्य बलवान् होने से प्रथम हो जाता है, फिर जो लोप न कहें तो पीछे सवर्णदीर्घ एकादेश होकर सम्बुद्धि में भी दीर्घ ईकार बना रहे । इसलिये ईकार प्रत्यय के परे इवर्णान्त का लोप कहा है ।

इवर्णान्त का लोप तद्धितप्रत्ययों के परे—दुल्या अपत्यं दौलेयः; बलि—बालेयः; अत्रि—आत्रेयः इत्यादि । अवर्णान्त का लोप ईकार प्रत्यय के परे—कुमारी; किशोरी; गौरी; जानपदी इत्यादि । तद्धितप्रत्यय के परे—दाक्षिः; प्लाक्षिः; बलाकाया अपत्यं बालाकिः; सुमित्राया अपत्यं सौमित्रिः इत्यादि ।

यहां सर्वत्र लोप को आदेश मान के अन्त्य अल् इवर्ण और उवर्ण का लोप होता है। यह भी सूत्र (ओर्गुणः) इसी के समीप पूर्व लिख चुके हैं, परन्तु उसी का सा लिखना इसका भी जानो ।। ८७६ ।।

वा०—यस्तेत्यादौ श्यां प्रतिषेधः ।। ८७७ ।।

(यस्येति च) इत्यादि सूत्रों में औ विभक्ति के स्थान में जो शी आदेश होता है, उस ईकार के परे इवर्ण अवर्ण के लोप का निषेध करना चाहिये। जैसे—काण्डे; सृङ्गे, यहाँ जब नपुंसक काण्ड और शृङ्ग शब्दों से परे औ के स्थान में शी हो जाता है, तब अवर्ण का लोप प्राप्त है, सो न हो।

और—कुड्ये; सौर्य्ये यहां भी पूर्व के समान अवर्ण का लोप और आगामी सूत्र से उपधासंज्ञक यकार का लोप प्राप्त है, सो न होवे।

जैसे श्रियौ; श्रियः; भ्रुवौ; भ्रुवः इत्यादि में इयङ् आदेश होते हैं, वैसे ही—वत्सान् प्रीणातीति वत्सप्रीः, लेखाभ्रूः, तस्या अपत्यं वात्सप्रेयः; लैखाभ्रेयः इत्यादि में भी इयङ् उवङ् आदेश प्राप्त हैं, परन्तु परविप्रतिषेध मान के इवर्ण उवर्ण का लोप हो जाता है ।। ८७७ ।।

सूर्य्यतिष्यागस्त्यमत्स्यानां य उपधायाः ।। ८७८ ।।

—अ० ६ । ४ । १४९ ।।

तद्धितसंज्ञक और ईकार प्रत्यय परे हो, तो सूर्य्य, तिष्य, अगस्त्य और मत्स्य शब्दों के उपधाभूत भसंज्ञक यकार का लोप हो जावे। और अवर्ण का लोप तो पूर्वसूत्र से हो ही जाता है।

जैसे—सूर्य्येण एकदिक् सौरी बलाका, यहां उपधाग्रहण ज्ञापक से अवर्ण का लोप असिद्ध नहीं समझा जाता; तिष्येण युक्तः कालः तैषमहः; तैषी रात्री; अगस्त्यस्यापत्यं कन्या—इस विग्रह में ऋषिवाची अगस्त्य शब्द से अण् प्रत्यय हो जाता है= आगस्ती; आगस्तीयः। मत्स्य शब्द के गौरादि गण में होने से ङीष् हो जाता है=मत्सी।

'उपधा' ग्रहण इसलिये है कि—सूर्य्यचरी, यहां सूरी शब्द से भूतपूर्व अर्थ में चरट् प्रत्यय के परे पुंवद्भाव हुआ है। स्थानिवत् मान के यकार का लोप प्राप्त है, उपधा के न होने से नहीं होता, इत्यादि ।। ८७८ ।।

वा०—मत्स्यस्य ङ्याम् ।। ८७९ ।।

ङीष् प्रत्यय के परे ही मत्स्य शब्द के उपधा यकार का लोप हो, अन्यत्र नहीं। जैसे—मत्सी। नियम होने से—मत्स्यस्य विकारो मात्स्यं मांसम्, यहां न हो ।। ८७९ ।।

वा०—सूर्य्यागस्त्ययोश्छे च ।। ८८० ।।

छ और ङीप् ङीप् प्रत्यय के परे ही सूर्य और अगस्त्य शब्दों के यकार का लोप हो। जैसे—सौरीयः, सौरी; आगस्तीयः, आगस्ती।

नियम होने से—सूर्य्यो देवताऽस्य सौर्य्यं हविः; अगस्त्यस्य गोत्रापत्यमागस्त्यः; यहां न होवे ।। ८८० ।।

वा०—तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि ।। ८८१ ।।

यहां स्वरूपग्रहणपरिभाषा का आश्रय इसलिये नहीं होता जिसलिये वार्त्तिक पढ़ा है। अर्थात् स्वरूपग्रहण के न होने में वार्त्तिक ज्ञापक है।

तद्धितसंज्ञक और ईकार प्रत्यय परे हो, तो तिष्य और पुष्य शब्दों के उपधा यकार का लोप होवे, अन्य पर्य्यायवाची का नहीं। जैसे—तिष्यनक्षत्रेण युक्तः कालः तैषः; पौषः।

नियम इसलिये है कि—सैध्यः, यहां लोप न हो ॥ ८८१ ॥

वा०—अन्तिकस्य तसि कादिलोपश्चाद्युदात्तश्च ॥ ८८२ ॥

अन्तिक शब्द से तसि प्रत्यय परे हो, तो कादि—स्वरसहित ककार—का लोप और आद्युदात्तस्वर होवे। जैसे—अन्तितो न दूरात्।

तसि प्रत्यय को प्रत्ययस्वर होने से अन्तोदात्त होता, इसलिये आद्युदात्त कहा है। और अन्तिक शब्द से अपादान कारक में असि प्रत्यय होता है ॥ ८८२ ॥

वा०—तमे तादेश्च ॥ ८८३ ॥

यहां चकार ग्रहण से आदि की भी अनुवृत्ति आती है।

तम प्रत्यय परे हो, तो अन्तिक शब्द तादि—तिक—भाग तथा कादि—क—मात्र का लोप होवे। जैसे—अतिशयेनान्तिकम् अन्तमः; अन्तिमः; अग्ने त्वन्नो अन्तमः; अन्तितमे अवरोहति।

यद्यपि इस वार्त्तिक में छन्दोग्रहण नहीं किया, तथापि वैदिक प्रयोगों में ही बहुधा इसकी प्रवृत्ति दीख पड़ती है। इससे पूर्व वार्त्तिक में जो तसि प्रत्यय का ग्रहण है, उसकी महाभाष्यकार ने उपेक्षा की है कि—'अन्तिके सीदति अन्तिषत्' इत्यादि प्रयोगों में भी कादिलोप हो जावे ॥ ८८३ ॥

हलस्तद्धितस्य ।। ८८४ ।। —अ० ६ । ४ । १५० ।।

हल् से पूरे जो तद्धितसंज्ञक प्रत्यय का उपधा यकार, उसका लोप होवे, ईकार प्रत्यय परे हो तो। जैसे—गर्गस्यापत्यं कन्या गार्गी; वात्सी; शाकली इत्यादि ।

यहां 'हल्' ग्रहण इसलिये है कि—वैद्यस्य स्त्री वैद्यी, यहां भी यकार का लोप न हो ।। ८८४ ।।

आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति ।। ८८५ ।।

—अ० ६ । ४ । १५१ ।।

आकार जिसके आदि में न हो ऐसा तद्धितसंज्ञक प्रत्यय परे हो, तो हल् से परे अपत्याधिकारस्थ प्रत्यय के उपधा यकार का लोप होवे ।

और इस सूत्र में फिर 'तद्धित' ग्रहण से यह भी समझना चाहिये कि ईकार प्रत्यय परे हो, तो अपत्यसंज्ञक से भिन्न यकार का भी लोप हो जाता है। जैसे—गर्गाणां समूहो गार्गकम्; वात्सकम्; सोमो देवताऽस्य सौम्यं हविः; सोमी इष्टिः ।

'आपत्य' ग्रहण इसलिये है कि—सांकाश्यकः; काम्पिल्यकः; यहां लोप न हो। 'आकारादि का निषेध' इसलिये है कि—गार्ग्यायणः; वात्स्यायनः, यहां लोप न हो। और 'हल् से परे' इसलिये कहा है कि—कारिकेयस्य युवापत्यं कारिकेयिः, यहां भी लोप न होवे ।। ८८५ ।।

क्यच्व्योश्च ।। ८८६ ।। —अ० ६ । ४ । १५२ ।।

क्य और च्वि प्रत्यय परे हों, तो भी हल् से परे अपत्यसंज्ञक यकार का लोप होवे । जैसे—गार्ग्य इवाचरति गार्गीयति; वात्स्य

इवाचरति वात्सीयति; शाकलीयति; गार्गीयते; वात्सीयते; शाकलीयते इत्यादि। च्वि प्रत्यय के परे—गार्गीभूतः; वात्सीभूतः; शाकलीभूतः इत्यादि।

यहां अपत्यसंज्ञक 'यकार' का ग्रहण इसलिये है कि—सांकाश्यायते; सांकाश्यीभूतः, यहां लोप न हो। और 'हल् से परे' इसलिये कहा है कि—कारिकेयीयति; कारिकेयीभूतिः, यहां भी यकार का लोप न होवे ॥ ८८६ ॥

बिल्वकादिभ्यश्छस्य लुक् ॥ ८८७ ॥

—अ० ६।४।१५३॥

(नडादीनां कुक् च) इस सूत्र पर नडादिगण के अन्तर्गत बिल्वादि शब्द पढ़े हैं। उनको कुक् का आगम होने से बिल्वक आदि होते हैं।

बिल्वक आदि शब्दों से परे छ प्रत्यय का लुक् हो, तद्धित-संज्ञक प्रत्यय परे हों तो। जैसे—बिल्वा अस्यां सन्तीति बिल्वकीया—तस्यां भवाः बैल्वकाः; वेणुकीयाः—वैणुकाः; वेत्रकीयाः—वैत्रकाः इत्यादि।

यहां 'छ' प्रत्यय का ग्रहण इसलिये है कि—कुक् आगम का लुक् न होवे। अर्थात् (सन्नियोगशिष्टानां०) इस परिभाषा से कुगागम के सहित लुक् प्राप्त है, सो न हो। और लोप की अनुवृत्ति चली आती है, फिर 'लुक्' ग्रहण इसलिये किया है कि—सम्पूर्ण प्रत्यय का लोप हो जावे। लुक् न कहते तो अन्त्य अल् के स्थान में होता ॥ ८८७ ॥

तुरिष्ठेमेयस्सु ।। ८८८ ।। —अ० ६ । ४ । १५४ ।।

पूर्व से यहां लुक् की अनुवृत्ति नहीं आती, किन्तु लोप की आती है। लुक् होने से अङ्गकार्य्य गुण का निषेध प्राप्त है। जो अन्त्य का लोप होवे, तो सूत्र ही व्यर्थ होवे, क्योंकि टि भाग का लोप तो अगले सूत्र से हो हो जाता।

इष्ठन्, इमनिच् और ईयसुन् ये तद्धितसंज्ञक प्रत्यय परे हों, तो तृच् तृन् प्रत्ययान्त शब्दों का लुक् होवे। प्रत्ययमात्र का लुक् कहा है, इसलिये सब का हो जाता है। जैसे—अतिशयेन कर्त्ता करिष्ठः; भृशं विजेता विजयिष्ठः; वोढा वहिष्ठो वृषभः; दोहीयसी धेनुः इत्यादि। यहां इमनिच् ग्रहण उत्तरार्थ है ।।८८८।।

टेः ।। ८८९ ।।—अ० ६ । ४ । १५५ ।।

इष्ठन्, इमनिच् और ईयसुन् प्रत्यय परे हों, तो भसंज्ञक अङ्गों के टिभाग का लोप होवे। जैसे—अतिशयेन पटुः पटिष्ठः; लघिष्ठः; पटीयान्; लघीयान्; पटिमा; लघिमा इत्यादि।

यह लोप गुण का अपवाद उवर्णान्त शब्दों में समझना चाहिये। अर्थात् गुण की प्राप्ति में लोपविधान किया है ।।८८९।।

वा०—णाविष्ठवत्प्रातिपदिकस्य पुंवद्भावरभावटिलोपयणादिपरप्रादिविन्मतोर्लुक्कन्विध्यर्थम् ।। ८९० ।।

णिच् प्रत्यय के परे भसंज्ञक प्रातिपदिकमात्र को इष्ठवत् कार्य्य होवे, प्रयोजन यह है कि पुंवद्भाव, रभाव, टिलोप, यणादिपर, प्रादि आदेश, विन्मतोर्लुक् और कन् प्रत्यय, ये विधि होने के लिये यह वार्त्तिक कहा है।

जैसे—पुंवद्भाव–एनीमाचष्टे एतयति; श्येनीमाचष्टे श्येतयति। इष्ठन् प्रत्यय के परे पुंवद्भाव कहा है, वैसे ही यहां णिच् प्रत्यय के परे भी हो जाता है। इसी प्रकार सब कार्य जो इष्ठन् के परे होते हैं, वे णिच् प्रत्यय के परे भी समझना चाहिये।

रभाव—पृथुमाचष्टे, प्रथयति; म्रदयति। यहां (रऋतो०) इस आगामी सूत्र से इष्ठन् के परे ऋकार को र आदेश कहा है, सो णिच् के परे भी होजाता है।

टिलोप—पटुमाचष्टे पटयति; लघुमाचष्टे लघयति। यहां इसी (टेः) सूत्र से जो इष्ठन् प्रत्यय के परे टिलोप कहा है, वह णिच् प्रत्यय के परे भी हो जाता है।

यणादिपर—स्थूलमाचष्टे स्थवयति; दूरमाचष्टे दवयति इत्यादि। यहां अगले सूत्र से इष्ठन् प्रत्यय के परे यण् को आदि लेके परभाग का लोप और पूर्व को गुणादेश कहा है, सो णिच् प्रत्यय के परे भी हो जाता है।

प्रादि—अगले सूत्र से इष्ठन् प्रत्यय के परे प्रिय आदि शब्दों को प्र आदि आदेश कहे हैं, सो णिच् प्रत्यय के परे भी हो जावें। जैसे—प्रियमाचष्टे प्रापयति; स्थिरमाचष्टे, स्थापयति। यहां प्रिय और स्थिर शब्दों को प्र, स्थ आदेश होकर (अचोऽञ्णिति) सूत्र में अण् ग्रहण के होने से प्र, स्थ को वृद्धि होकर पुगागम हो जाता है।

विन्मतोर्लुक्—इस सूत्र से इष्ठन् प्रत्यय के परे विन् और मतुप् प्रत्ययों का लुक् कहा है, सो णिच् प्रत्यय के परे भी हो जावे। जैसे—स्रग्विणमाचष्टे स्रजयति; वसुमन्तमाचष्टे वसयति। यहां वसु शब्द के उकार का भी लोप हो जाता है।

कन्विधि—युव और अल्प शब्दों को इष्ठन् प्रत्यय के परे कन् आदेश कह चुके हैं, सो णिच् प्रत्यय के परे भी हो जावे। जैसे—युवानमाचष्टे—अल्पमाचष्टे कनयति; यवयति; अल्पयति इत्यादि।

इस वार्त्तिक के उदाहरणों की गिनती नहीं करदी कि इतने ही स्थलों में इस का प्रयोजन है, किन्तु उदाहरणमात्र दिये हैं। और भी इसके बहुत प्रयोजन समझने चाहियें ॥ ८९० ॥

स्थूलदूरयुवह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणां यणादिपरं पूर्वस्य च गुणः ॥ ८९१ ॥ —अ० ६। ४। १५६॥

इष्ठन् इमनिच् और ईयसुन् प्रत्यय परे हों, तो स्थूल, दूर, युव, ह्रस्व, क्षिप्र और क्षुद्र शब्दों के यण् को आदि ले के परभाग का लोप और पूर्व को गुणादेश होवे।

जैसे—अतिशयेन स्थूलः स्थविष्ठः; स्थवीयान्; अत्यन्तं दूरं दविष्ठम्; दवीयः। यहां स्थूल शब्द में ल और दूर में र मात्र का लोप होजाता, और पूर्व ऊकार को गुण होकर अवादेश होता है। युवन्—अत्यन्तो युवा यवीयान्; यविष्ठः। इन स्थूल आदि तीन शब्दों का पृथ्वादि गण में पाठ न होने से इमनिच् प्रत्यय नहीं होता।

ह्रस्व—ह्रसिष्ठः; ह्रसीयान्; ह्रसिमा। क्षिप्र—क्षेपिष्ठः; क्षेपीयान्; क्षेपिमा; [क्षुद्र—] क्षोदिष्ठः; क्षोदीयान्; क्षोदिमा। इन ह्रस्व आदि तीन शब्दों का पृथ्वादिगण में पाठ होने से इमनिच् हो जाता है।

यहां 'पर' ग्रहण इसलिये किया है कि—यण को आदि लेके पूर्वभाग का लोप न हो जावे ॥ ८९१ ॥

प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्धतृप्रदीर्घवृन्दारकाणां प्रस्थस्फवर्बंहिगर्वर्षित्रब्द्राघिवृन्दाः ॥८६२॥

—अ० ६ । ४ । १५७ ॥

प्रिय, स्थिर, स्फिर, उरु, बहुल, गुरु, वृद्ध, तृप्र, दीर्घ और वृन्दारक शब्दों के स्थान में प्र, स्थ, स्फ, बर्, बंहि, गर्, वर्षि, त्रप्, द्राघि और वृन्द आदेश यथासंख्य करके होवें, इष्ठन् इमनिच् और ईयसुन् प्रत्यय परे हों तो।

जैसे—प्रिय—प्र—अतिशयेन प्रियः प्रेष्ठः; प्रेयान्; प्रियस्य भावः प्रेमा। स्थिर—स्थ—स्थेष्ठः; स्थेयान्। स्फिर—स्फ--स्फेष्ठः; स्फेयान्। उरु—वर्—वसिष्ठः; वरीयान्; वरिमा। बहुल—बंहि—बंहिष्ठः; बंहीयान्; बंहिमा। गुरु—गर्—गरिष्ठः; गरीयान्; गरिमा। वृद्ध—वर्षि—वर्षिष्ठः; वर्षीयान्। तृप्र—त्रप्—त्रपिष्ठः; त्रपीयान्। दीर्घ—द्राघि—द्राघिष्ठः; द्राघीयान्; द्राघिमा। वृन्दारक—वृन्द—वृन्दिष्ठिः; वृन्दीयान्।

प्रिय उरु गुरु बहुल और दीर्घ शब्द पृथ्वादि गण में पढ़े हैं, इस कारण उनसे इमनिच् प्रत्यय होता है, औरों से नहीं होता। इसीलिये उनसे इमनिच् प्रत्यय के उदाहरण भी नहीं दिये ॥८९२॥

बहोर्लोपो भू च बहोः ॥८६३॥

—अ० ६ । ४ । १५८ ॥

बहु शब्द से परे जो इष्ठन् इमनिच् और ईयसुन् प्रत्यय उनका लोप हो, और बहु शब्द को भू आदेश होवे।

भू अनेकाल् आदेश होने से सब के स्थान में हो जाता है। और (आदेः परस्य) इस परिभाषा सूत्र से पञ्चमीनिर्दिष्ट बहु शब्द से उत्तर को कहा लोपरूप आदेश आदि अल् के स्थान में होता है। जैसे—अतिशयेन बहुः भूयान्; भूयांसौ; भूयांसः; बहोर्भावः भूमा। बहु शब्द पृथ्वादिगण में पढ़ा है।

और इस सूत्र में बहु शब्द का दूसरी वार ग्रहण इसलिये है कि—प्रत्ययों के स्थान में भू आदेश न हो जावे ॥८९३॥

इष्ठन् प्रत्यय में विशेष यह है कि—

इष्ठस्य यिट् च ॥८९४॥ —अ० ६। ४। १५९॥

बहु शब्द से परे जो इष्ठन् प्रत्यय, उसको यिट् का आगम और बहु शब्द को भू आदेश भी होवे। जैसे—अतिशयेन बहुः भूयिष्ठः। यिट् में से इट् मात्र का लोप हो जाता है। और यह आगम लोप का अपवाद है ॥८९४॥

ज्यादादीयसः ॥८९५॥ —अ० ६। ४। १६०॥

प्रशस्य और वृद्ध शब्द को जो ज्य आदेश कह चुके हैं, उससे परे ईयसुन् प्रत्यय के ईकार को आकारादेश होवे। जैसे—अतिशयेन प्रशस्यो वृद्धो वा ज्यायान्।

लोप की अनुवृत्ति यहां चली आती, तो आकारादेश कहना नहीं पड़ता, फिर बीच में यिडागम का व्यवधान होने से नहीं आ सकती ॥८९५॥

र ऋतो हलादेर्लघोः ॥८९६॥ —अ० ६। ४। १६१॥

इष्ठन् इमनिच् और ईयसुन् प्रत्यय परे हों, तो हल् जिसके आदि में हो ऐसे लघुसंज्ञक ह्रस्व ऋकार के स्थान में र आदेश

हो । जैसे—अतिशयेन पृथु: प्रथिष्ठ:; प्रथीयान्; पृथोर्भाव: प्रथिमा; म्रदिष्ठ:; म्रदीयान्; म्रदिमा इत्यादि ।

यहां 'ऋकार' का ग्रहण इसलिये है कि—पटिष्ठ:; पटीयान्; पटिमा, यहां र आदेश न हो । 'हल् आदि में' इसलिये कहा है कि—अतिशयेन ऋजु: ऋजिष्ठ:; ऋजीयान्; ऋजिमा, यहां न हो । और 'लघुसंज्ञक' विशेषण इसलिये दिया है कि—कृष्णिष्ठ:; कृष्णीयान्; कृष्णिमा, यहां गुरुसंज्ञक ऋकार को र आदेश न होवे ॥८९६॥

वा०—पृथुमृदुभृशकृशदृढपरिवृढानामिति वक्तव्यम् ॥८९७॥

इस वार्त्तिक से परिगणन करते हैं कि पृथु, मृदु, भृश, कृश, दृढ़ और परिवृढ शब्दों के ऋकार को ही र आदेश हो, दूसरों को नहीं ।

इस नियम के होने से—कृतमाचष्टे कृतयति; मातरमाचष्टे मातयति; भ्रातयति इत्यादि में ऋ के स्थान में र आदेश नहीं होता ॥८९७॥

विभाषर्जोश्छन्दसि ॥८९८॥ —अ० ६ । ४ । १६२ ॥

यहां अप्राप्तविभाषा है, क्योंकि ऋजु शब्द के ऋकार को किसी से र आदेश प्राप्त नहीं है ।

इष्ठन् इमनिच् और ईयसुन् प्रत्यय परे हों, तो वेदविषय में ऋजु शब्द के ऋकार को विकल्प करके र आदेश होवे । जैसे—अतिशयेन ऋजु: रजिष्ठ:, ऋजिष्ठो वा पन्था:, रजीयान्, ऋजीयान्; ऋजुमाचष्टे ऋजयति इत्यादि ॥८९८॥

प्रकृत्यैकाच् ॥८९९॥ —अ० ६ । ४ । १६३ ॥

इष्ठन्, इमनिच् और ईयसुन् प्रत्यय परे हो, तो भसंज्ञक एकाच् जो शब्द है, वह प्रकृति करके रहे। जैसे—अतिशयेन स्रग्वी स्रजिष्ठः; स्रजीयान्; स्रग्विणमाचष्टे स्रजयति; अतिशयेन स्रुग्वान् स्रुचिष्ठः, स्रुचीयान्; स्रुग्वन्तमाचष्टे स्रुचयति।

यहां अजादि प्रत्ययों के परे विन् और मतुप् का लुक् होने के पश्चात् एकाच् शब्दों के टिभाग का लोप प्राप्त है, सो प्रकृतिभाव के होने से नहीं होता। फिर टिलोप का ही अपवाद यह सूत्र है।

यहां 'एकाच्' ग्रहण इसलिये है कि—अतिशयेन वसुमान् वसिष्ठः, यहां प्रकृतिभाव न होवे, किन्तु टिलोप ही हो जावे ॥८९९॥

वा०—प्रकृत्याऽके राजन्यमनुष्ययुवानः ॥९००॥

अक् प्रत्यय परे हो, तो राजन्य मनुष्य और युवन् शब्द प्रकृति करके रह जावें। जैसे—राजन्यानां समूहो राजन्यकम्; मानुष्यकम्, यहां (आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति इस) लिखित सूत्र से यकार का लोप प्राप्त है, सो न होवे।

यूनो भावः यौवनिका, यहां इस युवन् शब्द का मनोज्ञादिगण में पाठ होने से वुञ् प्रत्यय हुआ है, उस के नान्त टिभाग का लोप प्राप्त है, सो नहीं होता ॥९००॥

इनण्यनपत्ये ॥९०१॥ —अ० ६ । ४ । १६४ ॥

अपत्यरहित अर्थों में अण् प्रत्यय परे हो, तो भसंज्ञक इन्नन्त अङ्ग प्रकृति करके रह जावे। जैसे—सांकूटिनम्; सांरावणम्; सांमार्जिनम्; स्रग्विण इदं स्राग्विणम् इत्यादि।

यहां 'अण्' प्रत्यय का ग्रहण इसलिए है कि—दण्डिनां समूहो दाण्डम्, यहां अञ् प्रत्यय के परे प्रकृतिभाव न होवे। और 'अपत्य का निषेध' इसलिये है कि—मेधाविनोऽपत्यं मैधावः, यहां भी प्रकृतिभाव न होवे ॥९०१॥

गाथिविदथिकेशिगणिपणिनश्च ॥९०२॥

—अ० ६। ४। १६५॥

यह सूत्र अपत्यसंज्ञक अण् प्रत्यय के परे प्रकृतिभाव होने के लिए है।

अपत्यसंज्ञक अण् प्रत्यय परे हो, तो गाथिन्, विदथिन्, केशिन् गणिन्, पणिन् ये शब्द प्रकृति करके रहें। जैसे—गाथिनोऽपत्यं गाथिनः; वैदथिनः; कैशिनः; गाणिनः; पाणिनः ॥९०२॥

संयोगादिश्च ॥९०३॥ —अ० ६। ४। १६६॥

अपत्यसंज्ञक अण् प्रत्यय परे हो, तो संयोग से परे इन्भाग प्रकृति करके रहे। जैसे—शाङ्खिनोऽपत्यं शाङ्खिनः; माद्रिणः; वाज्रिणः ॥९०३॥

अन् ॥९०४॥ —अ० ६। ४। १६७॥

यहां अपत्य की अनुवृत्ति नहीं आती, किन्तु सामान्य विधान है।

अण् प्रत्यय परे हो, तो भसंज्ञक अन्नन्त अङ्ग प्रकृति करके रहे। जैसे—साम्नामयं मन्त्रः सामनः; वैमनः; सौत्वनः; जैत्वनः इत्यादि ॥९०४॥

ये चाभावकर्मणोः ॥९०५॥ —अ० ६ । ४ । १६८ ॥

भावकर्म अर्थों को छोड़ के अन्य अर्थों में विहित यकारादि तद्धित प्रत्यय परे हो, तो भसंज्ञक अन्नन्त अङ्ग प्रकृति करके रह जावे । जैसे—सामसु साधुः सामन्यः; ब्रह्मण्यः इत्यादि ।

यहां 'भावकर्म अर्थों का निषेध' इसलिये है कि—राज्ञो भावः कर्म वा राज्यम् । यह राजन् शब्द पुरोहितादिगण में पढ़ा है, इस कारण इससे यक् प्रत्यय हो जाता है ॥९०५॥

आत्माध्वानौ खे ॥९०६॥ —अ० ६ । ४ । १६९ ॥

तद्धितसंज्ञक ख प्रत्यय परे हो, तो आत्मन् और अध्वन् शब्द प्रकृति करके रह जावें । जैसे—आत्मनीनः; अध्वानमलङ्गामी अध्वनीनः ।

यहां 'ख' प्रत्यय का ग्रहण इसलिये है कि—प्रत्यात्मम्; प्राध्वम्; यहां प्रकृतिभाव न होवे । यहां आत्मन् अन्नन्त शब्द से समासान्त टच् और उपसर्ग से परे अध्वन् शब्द से अच् प्रत्यय हुआ है ॥९०६॥

न मपूर्वोऽपत्येवर्मणः ॥९०७॥

—अ० ६ । ४ । १७० ॥

अपत्याधिकार में विहित अण् प्रत्यय परे हो, तो वर्मन् शब्द को छोड़ के म जिसके पूर्व हो, ऐसा भसंज्ञक अन्नन्त अङ्ग प्रकृति करके न रहे, किन्तु टिलोप हो जावे । जैसे—सुषाम्णोऽपत्यं सौषामः; चान्द्रसामः; सुदाम्नोऽमत्यं सौदामः इत्यादि ।

यहां 'मकारपूर्व' का ग्रहण इसलिये है कि—सौत्वनः, यहां टिलोप न हो । 'अपत्य अर्थ' इसलिये कहा है कि—चर्मणा

परिवृतो रथश्चार्मणः, यहां प्रकृतिभाव हो जावे। और 'वर्मन् शब्द का निषेध' इसलिये किया है कि—भूपालवर्मणोऽपत्यं भौपालवर्म्मणः, यहां भी टिलोप न हो जावे ॥ ९०७ ॥

वा०—मपूर्वात् प्रतिषेधे वा हितनाम्नः ॥९०८॥

पूर्व सूत्र में मकार जिसके पूर्व हो उसको प्रकृतिभाव का निषेध किया है, सो हितनामन् शब्द को विकल्प करके प्रकृतिभाव हो। जैसे—हितनाम्नोऽपत्यं हैतनामः; हैतनाम्नः। यहां पक्ष में टिलोप हो जाता है ॥ ९०८ ॥

ब्राह्मोऽजातौ ॥९०९॥ —अ० ६।४।१७१॥

इस सूत्र का अर्थ महाभाष्यकार ने ऐसा किया है कि—इस सूत्र का योगविभाग करके दो वाक्यार्थ समझने चाहियें। ब्राह्म शब्द सामान्य अर्थों में अण्प्रत्ययान्त निपातन किया है। जैसे—ब्राह्मो गर्भः; ब्राह्ममस्त्रम्; ब्राह्मं हविः; ब्राह्मो नारदः इत्यादि। यहां सर्वत्र ब्रह्मन् शब्द का टिलोप निपातन से किया है।

और अपत्यसंज्ञक अण्प्रत्यय परे हो, तो जाति अर्थ में ब्रह्मन् शब्द के टिभाग का लोप न होवे। जैसे—ब्रह्मणोऽपत्यं ब्राह्मणः।

यहां 'अपत्य' ग्रहण इसलिये है कि—ब्राह्मी ओषधिः, यहां निषेध न लगे ॥ ९०९ ॥

कार्मस्ताच्छील्ये ॥९१०॥ —अ० ६।४।१७२॥

ताच्छील्य अर्थ में ण प्रत्यय परे हो, तो कर्म्मन् शब्द का टिलोप निपातन से किया है। जैसे—कर्म्मशीलः कार्म्मः। इस कर्म्मन् शब्द का छत्रादिगण में पाठ होने से शील अर्थ में ण प्रत्यय होता है।

यह सूत्र नियमार्थ है कि—कर्म्मण इदं कार्म्मणम्, इत्यादि में टिलोप न होवे ।। ९१० ।।

औक्षमनपत्ये ।।९११।। —अ० ६ । ४ । १७३ ।।

अपत्याधिकार को छोड़ के अन्य अर्थों में अण् प्रत्यय परे हो, तो औक्ष शब्द में टिलोप निपातन किया है। जैसे—उक्ष्ण इदं औक्षम् ।

'अपत्य का निषेध' इसलिये है कि—उक्ष्णोऽपत्यमौक्ष्णः, यहां निषेध न होवे ।। ९११ ।।

दाण्डिनायनहास्तिनायनाथर्वणिकजैह्माशिनेयवासिनायनिभ्रौणहत्यधैवत्यसारवैक्ष्वाकमैत्रेयहिरण्मयानि ।।९१२।।

—अ० ६ । ४ । १७४ ।।

इस सूत्र में दाण्डिनायन, हास्तिनायन, आथर्वणिक, जैह्माशिनेय, वासिनायनि, भ्रौणहत्य, धैवत्य, सारव, ऐक्ष्वाक, मैत्रेय और हिरण्मय इन शब्दों में तद्धित प्रत्ययों के परे टिलोप आदि कार्य निपातन से माने हैं ।

दण्डिन् और हस्तिन् शब्द नडादि गण में पढ़े हैं, इनसे फक् प्रत्यय के परे प्रकृतिभाव निपातन से किया है। जैसे—दण्डिनां गोत्रापत्यं दाण्डिनायन; हास्तिनायनः ।

अथर्वन् शब्द वसन्तादि गण में पढ़ा है। उपचारोपाधि मान के अथर्वा ऋषि के बनाये ग्रन्थ को भी 'अथर्वान्' कहते हैं। उससे पढ़ने जानने अर्थों में ठक् प्रत्यय के परे प्रकृतिभाव निपातन किया है। जैसे—अथर्वाणमधीते वेत्ति वा आथर्वणिकः ।

जिह्माशिन् शब्द शुभ्रादि गण में पढ़ा है, उससे अपत्य अर्थ में ढक् प्रत्यय के परे प्रकृतिभाव निपातन किया है। जैसे—जिह्माशिनोऽपत्यं जैह्माशिनेयः।

गोत्र संज्ञारहित वृद्धसंज्ञक वासिन् शब्द से अपत्य अथ में फिञ् प्रत्यय के परे टिलोप का निषेध निपातन किया है। जैसे—वासिनोऽपत्यं वासिनायनिः।

भ्रूणहन् और धीवन् शब्दों से ष्यञ् प्रत्यय के परे इनके नकार को तकारादेश निपातन किया है। जैसे—भ्रूणघ्नो भावः भ्रौणहत्यम्; धीव्नो भावो धैवत्यम्। भ्रूणहन् शब्द से ष्यञ् प्रत्यय के णित् होने से (हनस्तोऽचिण्णलोः) इस सूत्र से नकारादेश हो जाता, फिर निपातन नियमार्थ है कि अन्य तद्धित प्रत्ययों के परे इसको तकारादेश न होवे। जैसे—भ्रूणघ्नोऽपत्यं भ्रौणघ्नः, व्रात्रघ्नः, यहां अण् प्रत्यय हुआ है।

सरयू शब्द से शैषिक अण् प्रत्यय के परे अय् भाग का लोप निपातन किया है। जैसे—सरय्वां भवं सारवमुदकम्। ऊकार को गुण होकर अवादेश हो जाता है।

जनपद के समान क्षत्रियवाची इक्ष्वाकु शब्द से अपत्य और तद्राज अर्थों में अञ् प्रत्यय के परे ऊकार का लोप निपातन किया है। जैसे—इक्ष्वाकोरपत्यमिक्ष्वाकूनां राजा वा ऐक्ष्वाकः।

मित्रयु शब्द गृष्ट्यादि गण में पढ़ा है, उससे ढञ् प्रत्यय के परे इय् आदेश का अपवाद यु शब्द का लोप निपातन किया है। जैसे—मित्रयोरपत्यं मैत्रेयः।

हिरण्य शब्द से मयट् प्रत्यय के परे य मात्र का लोप निपातन किया है। जैसे—हिरण्यस्य विकारः हिरण्मयः ॥९१२॥

ऋत्व्यवास्त्व्यवास्त्वमाध्वीहिरण्ययानि छन्दसि ॥९१३॥
—अ० ६ । ४ । १७५ ॥

ऋत्व्य, वास्त्व्य, वास्त्व, माध्वी और हिरण्यय, ये शब्द वेदविषय में तद्धितप्रत्ययान्त निपातन किये हैं ।

जैसे—ऋतौ भवम् ऋत्व्यम् ; वास्तौ भवं वास्त्व्यम्, यहां ऋतु और वास्तु शब्दों को यकारादि यत् प्रत्यय के परे यणादेश निपातन किया है ।

वस्तु शब्द से अण् प्रत्यय के परे गुण का अपवाद यणादेश निपातन किया है—वस्तूनि भवं वास्त्वम् । मधुशब्द से स्त्रीलिङ्ग में अण् प्रत्यय के परे यणादेश निपातन किया है। जैसे—मधुन इमा माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ।

हिरण्य शब्द से परे मयट् के म मात्र का लोप निपातन से किया है। जैसे—हिरण्यस्य विकारो हिरण्ययम् ॥ ९१३ ॥

तद्धितेष्वचामादेः ॥९१४॥ —अ० ७ । २ । ११७ ॥

ञित्, णित् तद्धितसंज्ञक प्रत्यय परे हों, तो अङ्ग के अचों में आदि अच् को वृद्धि हो। जैसे—ञित्—गर्गस्य गोत्रापत्यं गार्ग्यः; वात्स्यः; दाक्षिः; प्लाक्षिः इत्यादि। णित्—उपगोरपत्यम् औपगवः; कापटवः; सौम्यं हविः इत्यादि ॥ ९१४ ॥

किति च ॥९१५॥ —अ० ७ । २ । ११८ ॥

कित्संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हों, तो भी अङ्ग के अचों में आदि अच् को वृद्धि होवे। जैसे—फक्—नाडायनः; चारायणः; रैवत्या अपत्यं रैवतिकः इत्यादि ॥ ९१५ ॥

देविकाशिंशपादित्यवाड्दीर्घसत्रश्रेयसामात् ॥९१६॥

—अ० ७ । ३ । १ ॥

यहां ञित्, णित् और कित् तद्धित प्रत्ययों तथा अचों के आदि अच् इन सब की अनुवृत्ति चली आती है ।

ञित्, णित् और कित् तद्धितसंज्ञक प्रत्यय परे हों, तो देविका, शिंशपा, दित्यवाट, दीर्घसत्र और श्रेयस्, इन अङ्गों के आदि अच् को वृद्धि प्राप्त है, उस को बाध के आकारदेश होवे ।

जैसे—देविकायां भवं दाविकमुदकम्—देविका नाम किसी नदीविशेष का है; देविकाकूले भवाः दाविकाः शालयः; पूर्वदेविका नाम है प्राचीनों के ग्राम का—पूर्वदेविकायां भवः पूर्वः पूर्वदाविकः, यहां भी (प्राचां ग्राम०) इस आगामी सूत्र से उत्तरपदवृद्धि प्राप्त है, उसका अपवाद आकार ही हो जाता है ।

शिंशपाया विकारः शांशपश्चमसः, यह शिंशपा शब्द 'शीशों' वृक्ष का नाम है । उसके अनुदात्तादि होने से विकार अर्थ में अञ् प्रत्यय होता है । शिंशपास्थले भवाः शांशपास्थलाः । और पूर्वशिंशपा शब्द प्राचीनग्राम की संज्ञा है, उसको भी पूर्वोक्त प्रकार से उत्तरपदवृद्धि हो जाती है । जैसे—पूर्वशिंशपायां भवः पूर्वशांशपः ।

दित्यवाट्—दित्यौह इदं दित्यौहम्, यहां शैषिक अण् प्रत्यय हुआ है; दीर्घसत्र—दीर्घसत्रे भवं दार्घसत्रम् ; श्रेयसि भवं श्रायसम् ॥ ९१६ ॥

वा०—वहीनरस्येद्वचनम् ॥९१७॥

ञित्, णित् और कित् तद्धितसंज्ञक प्रत्यय परे हों, तो वहीनर शब्द के आदि अच् को इकारादेश होवे । जैसे—

वहीनरस्यापत्यं वैहीनरिः, यहां इकारादेश वृद्धि की प्राप्ति में नहीं कहा, इसी से वृद्धि का बाधक नहीं होता है। आदेश किये इकार को वृद्धि हो जाती है।

और किन्हीं ऋषि लोगों का इस विषय में यह अभिप्राय है कि—'विहीनर' शब्द से ही प्रत्यय होता है। अर्थात् यह ऐसा ही शब्द है। कामभोगाभ्यां विहीनो नरः विहीनरः। यहां पृषोदरादि मान के एक नकार का लोप हो जाता है। जिनके मत में 'विहीनर' शब्द है, उनके मत में वार्त्तिक नहीं करना चाहिये ॥ ९१७ ॥

केकयमित्रयुप्रलयानां यादेरियः ॥९१८॥

—अ० ७ । ३ । २॥

केकय, मित्रयु और प्रलय शब्दों के यकारादिक भाग को इय् आदेश होवे, ञित् णित् कित् तद्धित प्रत्यय परे हों तो, और आदि अच् को वृद्धि तो पूर्व सूत्रों से सिद्ध ही है।

जैसे—केकयस्यापत्यं केकयानां राजा वा कैकेयः, यहां जनपद क्षत्रियवाची केकय शब्द से अञ् प्रत्यय हुआ है; मित्रयुभावेन श्लाघते मैत्रेयिकया श्लाघते, यहां गोत्रवाची मित्रयु शब्द से श्लाघा अर्थ में वुञ् प्रत्यय हुआ है; प्रलायादागतं प्रालेयमुदकम्, यहां आगत अर्थ में अण् प्रत्यय हुआ है ॥ ९१८ ॥

न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच् ॥९१९॥

—अ० । ७ । ३ । ३ ॥

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धितप्रत्यय परे हों, तो यकार वकार से परे अचों के आदि अच् के स्थान में वृद्धि न हो, किन्तु

उन यकार वकार से पूर्व ऐच् का आगम हो, अर्थात् यकार से पूर्व ऐकार और वकार से पूर्व औकार आदेश होवे ।

जैसे—व्याकरणमधीते वेद वा वैयाकरण:; न्यायमधीते नैयायिक:; व्यसने भवं वैयसनम् इत्यादि; स्वश्वस्यापत्यं सौवश्व:; सौवर्ग:; स्वराणां व्याख्यानो ग्रन्थ: सौवर: इत्यादि ।

यहां 'यकार वकार से पूर्व' इसलिये कहा है कि—त्र्यर्थस्याऽपत्यं त्राथि:, यहां रेफ से पूर्व ऐच् का आगम न हो । 'पदान्त' विशेषण इसलिये है कि—यष्टि: प्रहरणमस्य याष्टीक:, यहां यकार से पूर्व ऐच् का आगम भी न होवे । और जहां यकार वकारों से उत्तर वृद्धि की प्राप्ति न हो, वहां उनसे पूर्व ऐच् का आगम भी न हो । जैसे—दध्यश्वस्यापत्यं दाध्यश्वि: ।। ९१९ ।।

द्वारादीनाञ्च ।। ९२० ।। —अ० ७ । ३ । ४ ।।

द्वारादि शब्दों के यकार वकार से उत्तर अचों के आदि अच् को वृद्धि न हो, किन्तु उन यकार वकारों से पूर्व तो ऐच् का आगम हो जावे ।

जैसे—द्वारे नियुक्त: दौवारिक:; द्वारपालस्यापत्यं दौवारपालम्; स्वरमधिकृत्य कृतो ग्रन्थ: सौवर:; सौवरोऽध्याय:; स्वाध्याय: प्रयोजनमस्य सौवाध्यायिक:; व्यल्कशे भव: वैयल्कश:; स्वस्तीत्याह सौवस्तिक:; स्वर्गमनं प्रयोजनमस्य सौवर्गमनिक:; स्फ्यकृतस्याऽपत्यं स्फैयकृत:; स्वादुमृदु भक्तिरस्य सौवादुमृदव; शुन इदं शौवनम्—यहां पूर्वलिखित (अन्) सूत्र से अण् प्रत्यय के परे प्रकृतिभाव हो जाता है, शुनो विकार: शौवनं मांसम्; श्वदंष्ट्रायां भव: शौवादंष्ट्रो मणि:; स्वस्येदमैश्वर्य्यं सौवम्; स्वग्रामे भव: सौवग्रामिक:—स्वग्राम शब्द से अध्यात्मादि गण में मान के ठञ् प्रत्यय होता है ।

पूर्व सूत्र में पदान्त यकार वकार से पूर्व ऐच् का आगम कहा है, यहां द्वारादि शब्दों में पदान्त नहीं, इसलिये फिर अलग करके कहा। स्वाध्याय शब्द इस द्वारादि गण में पढ़ा है, इसका दो प्रकार से निर्वचन होता है—सुष्ठु वा अध्ययनं स्वाध्यायः, शोभनं वा अध्ययनं स्वाध्यायः, अथवा स्वमध्ययनं स्वाध्यायः। इनमें से किसी प्रकार का निर्वचन समझो, स्वाध्याय शब्द सर्वथा यौगिक ही है।

और द्वारादि शब्द सब अव्युत्पन्न प्रातिपदिक हैं। इसीलिये यह सूत्र कहा है। सो जो 'सु+अध्याय' ऐसा विग्रह करें, तब तो पदान्त वकार से पूर्व प्रथम सूत्र से ही ऐच् का आगम हो जावेगा। और जब 'स्व+आध्याय' ऐसा निर्वचन करें तो भी स्व शब्द इसी गण में पढ़ा है। तो अगले सूत्र में केवल शब्द के ज्ञापन से इस प्रकरण में तदादिविधि होती है। फिर स्वशब्द जिसके आदि में हो ऐसे स्वाध्याय शब्द से इसी सूत्र करके ऐच् का आगम हो जावेगा। फिर स्वाध्याय शब्द को इस गण में पढ़ने से कुछ प्रयोजन नहीं। यह महाभाष्यकार का आशय है ॥ ९२० ॥

न्यग्रोधस्य च केवलस्य ॥ ९२१ ॥ —अ० ७ । ३ । ५ ॥

केवल न्यग्रोध शब्द के यकार से परे, अचों के आदि अच् के स्थान में वृद्धि न हो, किन्तु यकार से पूर्व ऐच् का आगम हो जावे। जैसे—न्यग्रोधस्य विकारो नैयग्रोधश्चमसः।

यहां 'केवल' शब्द का ग्रहण इसलिये है कि—न्यग्रोधमूले भवाः न्याग्रोधमूलाः शालयः, यहां ऐच् का आगम न होवे।

इस 'न्यग्रोध' शब्द का ग्रहण व्युत्पत्तिपक्ष में नियमार्थ है कि पदान्त यकार से पूर्व के केवल न्यग्रोध शब्द को ही ऐच् का

आगम हो, अन्य शब्दों को तदादि होने से भी हो जावे। और अव्युत्पत्तिपक्ष में विधान ज्ञापकार्थ है ।। ९२१ ।।

न कर्मव्यतिहारे ।। ९२२ ।। —अ० ७ । ३ । ६ ।।

कर्मव्यतिहार अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक के यकार वकार से पूर्व ऐच् का आगम न होवे। जैसे—व्यावक्रोशी; व्यावलेखी; व्यावहासी इत्यादि।

यहां कर्मव्यतिहार अर्थ में कृदन्त णच् प्रत्यय और तदन्त से स्त्रीलिङ्गस्वार्थ में तद्धितसंज्ञक अञ् प्रत्यय हुआ है ।। ९२२ ।।

स्वागतादीनां च ।। ९२३ ।। —अ० ७ । ३ । ७ ।।

ञित् णित् कित् संज्ञक तद्धितप्रत्यय परे हों, तो गणपठित स्वागतादि शब्दों के यकार वकार से पूर्व ऐच् का आगम न होवे।

जैसे—स्वागतमित्याह स्वागतिकः; स्वध्वरेण चरति स्वाध्वरिकः; स्वाङ्गस्यापत्यं स्वाङ्गिः; व्यङ्गस्यपत्यं व्याङ्गिः; व्यवहारः प्रयोजनमस्य व्यावहारिकः—यहां व्यवहार शब्द कर्मव्यतिहार अर्थ में नहीं, किन्तु लौकिक कार्य्यों का वाची है; स्वपतौ साधुः स्वापतेयः।

स्वागतादि सब यौगिक शब्द हैं, उनमें तो पदान्त यकार वकार से पूर्व ऐच् का आगम प्राप्त है, और स्वपति शब्द में यह बात नहीं, सो स्व शब्द द्वारादि गण में पढ़ा है, वहां ददाति से ऐच् का आगम प्राप्त है, इन सबका निषेध समझना चाहिये ।। ९२३ ।।

श्वादेरिञि ॥ ९२४ ॥ —अ० ७ । ३ । ८ ॥

तद्धितसंज्ञक इञ् प्रत्यय परे हो, तो किसी शब्द के आदि में वर्त्तमान श्व शब्द के वकार से पूर्व ऐच् का आगमन न हो। जैसे—श्वभस्त्रस्यापत्यं श्वाभस्त्रि:; श्वादंष्ट्रि: इत्यादि।

श्वन् शब्द द्वारादिगण में पढ़ा है, इस कारण इसको तदादिविधि मान कर वकार से पूर्व ऐच् प्राप्त है, उसका प्रतिषेध किया है ॥ ९२४ ॥

वा०—इकारादिग्रहणं च श्वागणिकाद्यर्थम् ॥ ९२५ ॥

सूत्र में तद्धितसंज्ञक इञ् प्रत्यय के परे ऐजागम का निषेध किया है, सो सामान्य इकारादि प्रत्यय के परे करना चाहिये। जैसे—श्वगणेन चरति श्वागणिक:, श्वायूथिक: इत्यादि। यह वार्त्तिक सूत्र का शेष है ॥ ९२५ ॥

वा०—तदन्तस्य चान्यत्र प्रतिषेध: ॥ ९२६ ॥

और इञ् प्रत्यय से भिन्न कोई प्रत्यय परे हो, तो आदि में वर्त्तमान श्व शब्द के वकार से पूर्व ऐच् का आगमन न हो। जैसे—श्वाभस्त्रे: स्वं श्वाभस्त्रम् इत्यादि ॥ ८२६ ॥

पदान्तस्यान्यतरस्याम् ॥ ९२७ ॥ —अ० ७ । ३ । ९ ॥

पद शब्द जिसके अन्त में हो, ऐसे श्व शब्द के वकार से पूर्व ऐच् का आगम विकल्प करके होवे। जैसे—श्वापदस्येदं श्वापदम्; शौवापदम् इत्यादि ॥ ९२७ ॥

उत्तरपदस्य ॥ ९२८ ॥ —अ ७ । ३ । १० ॥

यह अधिकार सूत्र है। यहां से आगे जो कार्य विधान करें, सो (हनस्तो०) इस सूत्र पर्य्यन्त सामान्य करके उत्तरपद को होगा ॥ ९२८ ॥

अवयवादृतोः ॥ ९२९ ॥ —अ० ७ । ३ । ११ ।

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धितप्रत्यय परे हों, तो अवयववाची के परे जो ऋतुवाची उत्तरपद उसके अचों में आदि अच् को वृद्धि होवे।

जैसे—पूर्ववर्षासु भवं पूर्ववार्षिकम्; पूर्वहैमनम्; अपरवार्षिकम्; अपरहैमनम् इत्यादि। यहां पूर्व शब्द का वर्षा और हेमन्त शब्द के साथ एकदेशी समास होता, और वर्षा शब्द से शैषिक ठक्, हेमन्त से अण् प्रत्यय और हेमन्त शब्द के तकार का लोप हुआ है।

यहां 'अवयव' शब्द का ग्रहण इसलिये है कि—पूर्वासु वर्षासु भवं पौर्ववार्षिकम्, यहां अवयविसमास के न होने से उत्तरपदवृद्धि न हुई। यहां वर्षा और हेमन्त शब्दों के पूर्व और अपर शब्द अवयव हैं ॥ ९२९ ॥

सुसर्वार्द्धाज्जनपदस्य ॥ ९३० ॥ —अ० ७ । ३ । १२ ॥

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हों, तो सु, सर्व और अर्ध शब्दों से परे जो जनपद देशवाची उत्तरपद, उसके अचों में आदि अच् के स्थान में वृद्धि होवे।

जैसे—सुपञ्चालेषु भवः सुपाञ्चालक; सर्वपाञ्चालकः; अर्द्धपाञ्चालकः इत्यादि। यहां शैषिक वुञ् प्रत्यय होता है ॥ ९३० ॥

दिशोऽमद्राणाम् ॥ ९३१ ॥ —अ० ७ । ३ । १३ ॥

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हों तो दिशावाची शब्दों से परे जो मद्र शब्द को छोड़ के जपनद

देशवाची उत्तरपद, उसके अचों में आदि अच् के स्थान में वृद्धि होवे ।

जैसे–पूर्वपञ्चाला निवासोऽस्य पूर्वपञ्चालकः, अपरपञ्चालकः; दक्षिणपञ्चालकः इत्यादि । यहां भी शैषिक वुञ् प्रत्यय होता है ।

यहां 'दिशावाची' का ग्रहण इसलिये है कि—पूर्वः पञ्चालानां पूर्वपञ्चालः पूर्वपञ्चालेषु भवः पौर्वपञ्चालकः; अपरपञ्चालकः, यहां एकदेशी समास में पूर्व तथा अपर शब्द दिशावाची नहीं, किन्तु अवयववाची हैं, इस कारण उत्तरपदवृद्धि नहीं होती। 'मद्रशब्द का निषेध' इसलिये है कि—पूर्वमद्रेषु भवः पौर्वमद्रः; आपरमद्रः, यहां शैषिक अञ् प्रत्यय के परे उत्तरपदवृद्धि नहीं होती ।। ९३१ ।।

प्राचां ग्रामनगराणाम् ।। ९३२ ।। —अ० ७ । ३ । १४ ।।

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हो, तो प्राचीन आचार्यों के मत में दिशावाची शब्दों से परे जो ग्राम और नगरवाची उत्तरपद, उसके अचों में आदि अच् के स्थान में वृद्धि हो ।

जैसे—ग्राम—पूर्वेषुकामशम्यां भवः पूर्वैषुकामशमः; अपरैषुकामशमः; पूर्वकार्णमृत्तिकः; अपरकार्णमृत्तिकः । नगरों से—पूर्वमथुरायां भवः पूर्वमाथुरः; अपरमाथुरः; पूर्वस्रौघ्नः दक्षिणस्रौघ्नः इत्यादि ।। ९३२ ।।

संख्यायाः संवत्सरसंख्यस्य च ।। ९३३ ।।

—अ० ७ । ३ । १५ ।।

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हों, तो संख्यावाची शब्दों से परे जो संवत्सर और संख्यावाची उत्तरपद, उसके अचों में आदि अच् के स्थान में वृद्धि होवे ।

जैसे—द्विसंवत्सरावधीष्टो भृतो भूतो भावी वा, द्विसांवत्सरिक:; द्वे षष्टी अधीष्टो भृतो भूतो भावी वा द्विवाष्टिक:; द्विसाप्ततिक:; द्वयाशीतक: इत्यादि।

यहां संवत्सर के ग्रहण से उत्तर सूत्र में परिमाणान्तग्रहण में कालपरिमाण् का ग्रहण नहीं होता, इससे—द्वैशमिक:; त्रैशमिक:, यहां उत्तरपदवृद्धि नहीं होती। द्विवर्षा; त्रिवर्षा, यहां परिमाणवाची से कहा ङीप् प्रत्यय भी नहीं होता ।।९३३।।

वर्षस्याभविष्यति ।।९३४।। —अ० ७।३।१६॥

यहां संख्यावाची की अनुवृत्ति आती है।

भविष्यत् अर्थ को छोड़ के अन्य अर्थों में स्थित ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हों, तो संख्यावाची शब्दों से परे जो वर्ष उत्तरपद, उसके अचों मे आदि अच् को वृद्धि हो। जैसे—द्विवर्षे अधीष्टो भृतो भूतो वा द्विवार्षिक:; त्रिवार्षिक: इत्यादि।

यहां 'भविष्यत् अर्थ का निषेध' इसलिए किया है कि—त्रीणि वर्षाणि भावी त्रैवर्षिकम्, यहां उत्तरपदवृद्धि न होवे।

अधीष्ट और भृत अर्थों में भी भविष्यत् काल होता है। परन्तु वहां भविष्यत् का निषेध नहीं लगता, क्योंकि उन अर्थों में जो भविष्यत् आ सकता है, वह तद्धित प्रत्यय का अर्थ नहीं है। जैसे—द्वे वर्षे अधीष्टो भृतो वा कर्म करिष्यतीति द्विवार्षिको मनुष्य: ।।९३४।।

परिमाणान्तस्यासंज्ञाशाणयो: ।।९३५।।
—अ० ७।३।१७॥

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हों, तो संख्यावाची शब्दों से परे जो संज्ञाविषय में और शाण उत्तरपद को छोड़ के अन्य परिमाणान्त उत्तरपद, उसके अचों में आदि अच् को वृद्धि होवे ।

जैसे—द्वौ कुडवौ प्रयोजनमस्य द्विकौडविक:; द्वाभ्यां सुवर्णाभ्यां क्रीतं द्विसौवर्णिकम्; द्वाभ्यां निष्काभ्यां क्रीतं द्विनैष्किकम्; त्रिनैष्किकम् इत्यादि । यहां ठञ् प्रत्यय हुआ है ।

यहां 'संज्ञाविषय में निषेध' इसलिये किया है कि—पञ्च लोहित्य: परिमाणस्य पाञ्चलोहितिकम्; पाञ्चकपालिकम्, यहां संज्ञा में उत्तरपदवृद्धि न हो । और 'शाण उत्तरपद के परे निषेध' इसलिए है कि—द्वाभ्यां शाणाभ्यां क्रीतं द्वैशाणम्; त्रैशाणम्, यहां क्रीत अर्थ में अण् प्रत्यय के परे उत्तरपद को वृद्धि न होवे ।।९३५।।

जे प्रोष्ठपदानाम् ।।९३६।। —अ० ७ । ३ । १८ ।।

यहां जे शब्द से जात अर्थ का बोध होता है । जात अर्थ में विहित ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हों, तो प्रोष्ठपदा नामक नक्षत्र में उत्तरपद के आदि अच् को वृद्धि होवे ।

जैसे—प्रोष्ठपदासु जात: प्रोष्ठपदो माणवक:, यहां नक्षत्रवाची से सामान्य काल अर्थ में विहित अण् प्रत्यय का लुप् होकर फिर नक्षत्रवाची से जात अर्थ में अण् प्रत्यय होता है ।

यहां 'जे' ग्रहण इसलिये है कि—प्रोष्ठपदासु भव: प्रोष्ठपद:, यहां वृद्धि न हो । और इस सूत्र में बहुवचन निर्देश से प्रोष्ठपदा के पर्य्यायवाचियों का भी ग्रहण समझना चाहिये । जैसे—भद्रपदासु जातो भद्रपाद: ।।९३६।।

हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च ।। ९३७।।

—अ० ७ । ३ । १९ ।।

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हों, तो हृद, भग, सिन्धु ये जिनके अन्त में हों, ऐसे पूर्वपदों और उत्तरपदों के अचों में आदि अच् के स्थान में वृद्धि हो।

जैसे—सुहृदयस्येदं सौहार्दम्; सुहृदयस्य भावः सौहार्दम्; सुभगस्य भावः सौभाग्यम्; दौर्भाग्यम्; सुभगाया अपत्यं सौभागिनेयः; दौर्भागिनेयः ।

और 'सुभग' शब्द उद्गात्रादि गण में पढ़ा है, उससे वेद में ही अञ् प्रत्यय होता है। परन्तु उभयपदवृद्धि नहीं होती, क्योंकि 'महते सौभगाय' ऐसा ही प्रयोग वेद में आता है। सो वेद में सब कार्य्यों का विकल्प होने से पूर्वपदवृद्धि हो जाती है ।।९३७।।

अनुशतिकादानां च ।।९३८।। —अ० ७ । ३ । २० ।।

यहां पूर्व सूत्र से पूर्वपद की भी अनुवृत्ति चली आती है।

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हों, तो अनुशतिकादिगण पठित शब्दों में पूर्व और उत्तर दोनों पदों के आदि अचों के स्थान में वृद्धि होवे।

जैसे—अनुशतिकस्येदम् आनुशातिकम्; अनुहोडेन चरति आनुहौडिकः; अनुसंवरणे दीयते आनुसांवरणम्; अनुसंवत्सरेण दीयते आनुसांवत्सरिक; अङ्गारवेणोरपत्यम् आङ्गारवैणवः; असिहत्ये भवम् आसिहात्यम्; अस्यहत्यशब्दोऽस्मिन्नध्यायेऽस्ति आस्यहात्यः; अस्यहेतिः प्रयोजनमस्य आस्यहैतिकः; वध्योगस्यापत्यं वाध्यौगः, पुष्करसतोऽपत्यं पौष्करसादिः; अनुहरतोऽपत्यम्

आनुहारतिः; कुरुकतस्यापत्यं कौरुकात्यः; कुरुपञ्चालेषु भवः कौरुपाञ्चालः; उदकशुद्धस्यापत्यम् औदकशौद्धिः।

इह लोके भवं ऐहलौकिकम्; परलोके भवं पारलौकिकम् लोकोत्तरपद प्रातिपदिकों से ठञ् प्रत्यय कह चुके हैं; सर्वलोके विदितः सार्वलौकिकः पुरुषः; सर्वपुरुषस्येदं कर्म सार्वपौरुषम्; सर्वभूमेर्निमित्तं संयोग उत्पातो वा सार्वभौमः; प्रयोगे भवं प्रायौगिकम्; परस्त्रिया अपत्यं पारस्त्रैणेयः—परस्त्री शब्द कल्याण्यादिगण में पढ़ा है, वहां इनङ् आदेश हो जाता है; राजपुरुष शब्द को ष्यञ् प्रत्यय के परे उभयपदवृद्धि होती है—राजपुरुषस्य कर्म राजपौरुष्यम्।

ष्यञ् प्रत्यय का नियम इसलिये है कि—राजपुरुषस्यापत्यं राजपुरुषायणिः, यहां उत्तरदेशीय आचार्य्यों के मत में गोत्रसंज्ञा-रहित वृद्धिसंज्ञक प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में फिञ् प्रत्यय होता है; शतकुम्भे भवः शातकौम्भः; सुखशयनं पृच्छति सौखशायनिकः; परदारान् गच्छति पारदारिकः; सूत्रनडस्यापत्यं सौत्रनाडिः; अभिगममर्हति; आभिगामिकः; अधिदेवे भवमाधिदैविकम्; आधिभौतिकम्; आध्यात्मिकम्—अध्यात्मादि शब्दों से भवार्थ में ठञ् प्रत्यय कह चुके हैं।

यह आकृतिगण इसलिये समझना चाहिये कि अन्य अपठित शब्दों को भी उभयपदवृद्धि हो जावे। जैसे—चतस्र एव विद्याः चातुर्वैद्यम्; चातुराश्रम्यम् इत्यादि में भी उभयपदवृद्धि हो जावे ॥९३८॥

देवताद्वन्द्वे च ॥९३९॥ —अ० ७। ३। २१॥

ञित् णित् और कित संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हों, तो देवता-वाची शब्दों के द्वन्द्वसमास में पूर्व और उत्तर दोनों पदों के अचों में

आदि अच् के स्थान में वृद्धि होवे। जैसे—आग्निवारुणी; आग्निमारुतो मन्त्रः।

परन्तु जहां सूक्त ऋचा मन्त्र और हविष्य पदार्थ सम्बन्धी देवतावाची शब्दों का द्वन्द्वसमास हो, वहीं उभयपदवृद्धि हो। और—स्कन्दविशाखौ देवते अस्य स्कान्दविशाखं कर्म्म; ब्राह्मप्रजापत्यम्, यहां उभयपदवृद्धि न होवे ॥ ९३९ ॥

नेन्द्रस्य परस्य ॥ ९४० ॥ — अ० ७ । ३ । २२ ॥

देवतावाची शब्दों के द्वन्द्वसमास में उत्तरपद में जो इन्द्र शब्द आवे, तो उसको वृद्धि न हो। पूर्व सूत्र से प्राप्त है, उसका निषेध किया है। जैसे—सोमेन्द्रौ देवते अस्य सोमेन्द्रः; आग्नेन्द्रः इत्यादि।

यहां 'पर' ग्रहण इसलिये है कि—ऐन्दाग्नं चरुं निर्वपेत्, यहां पूर्वपद में निषेध न होवे। इन्द्र शब्द में दो स्वर हैं। उनमें से अन्त्य अकार का तद्धित प्रत्यय के परे लोप, और पूर्व इकार का दूसरे वर्ण के साथ एकादेश होने से उत्तरपदवृद्धि को प्राप्ति ही नहीं हो सकती, फिर निषेध करने से यह ज्ञापक होता है कि अन्तरङ्ग भी एकादेश को बाध के प्रथम पूर्वोत्तरपदवृद्धि हो होती है।

इस ज्ञापक का अन्यत्र फल यह है कि—पूर्वैषुकामशमः, यहां उत्तरपद में इषु शब्द के इकार की वृद्धि प्रथम ही हो जाती है, पीछे एकादेश होता है ॥ ९४० ॥

दीर्घाच्च वरुणस्य ॥ ९४१ ॥ —अ० ७ । ३ । २३ ॥

दीर्घ वर्ण से परे जो वरुण उत्तरपद उसके आदि अच् को वृद्धि न हो।

यहां भी देवता के द्वन्द्वसमास में पूर्वसूत्र से प्राप्ति है, उसका प्रतिषेध समझना चाहिये। जैसे—इन्द्रावरुणौ देवते अस्य ऐन्द्रावरुणम्; मैत्रावरुणम् इत्यादि।

'दीर्घ वर्ण से परे' इसलिये कहा है कि—आग्निवारुणी, यहां निषेध न हो जावे ॥ ९४१ ॥

प्राचां नगरान्ते ॥ ९४२ ॥ —अ० ७। ३। २४॥

प्राचीनों के देश में ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हो, तो नगरान्त अङ्ग में उभयपद के आदि अच् को वृद्धि हो। जैसे—सुह्मनगरे भवः सौह्मनागरः; पौण्ड्रनागरः इत्यादि।

यहां 'प्राचां' ग्रहण इसलिये है कि—मद्रनगरे भवः माद्रनगरः, यहां उत्तरदेशीय नगरान्त में न होवे ॥ ९४२ ॥

जङ्गलधेनुवलजान्तस्य विभाषितमुत्तरम् ॥ ९४३ ॥

—अ० ७। ३। २५॥

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हो, तो जङ्गल, धेनु, वलज ये शब्द जिसके अन्त हों, उस समुदाय के उत्तरपद के आदि अच् को विकल्प करके, और पूर्वपद के आदि अच् को नित्य वृद्धि होवे।

जैसे—कुरुजङ्गलेषु भवं कौरुजाङ्गलम्, कौरुजङ्गलम्; वैश्वधैनवम्, वैश्वधेनवम्; सौवर्णवालजः, सौवर्णवलजः, यहां शैषिक अण् प्रत्यय हुआ है ॥ ९४३ ॥

अर्द्धात्परिमाणस्य पूर्वस्य तु वा ॥ ९४४ ॥

—अ० ७। ३। २६॥

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हो, तो अर्द्ध शब्द से परे जो परिमाणवाची उत्तरपद, उसके अचों में आदि अच् को नित्य और पूर्वपद के आदि अच् को विकल्प करके वृद्धि होवे। जैसे—अर्द्धद्रोणेन क्रीतमार्द्धद्रौणिकम्, अर्द्धद्रौणिकम्; आर्द्धकौडविकम्, अर्द्धकौडविकम्।

यहां 'परिमाण' ग्रहण इसलिये किया है कि—अर्द्धक्रोशः प्रयोजनमस्य आर्द्धक्रोशिकम्, यहां पूर्वपद को विकल्प और उत्तरपद को नित्य वृद्धि न होवे ॥ ९४४ ॥

नातः परस्य ॥ ९४५ ॥—अ० ७।३।२७॥

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हो, तो अर्द्ध शब्द से परे परिमाणवाची उत्तरपद के आदि अकार को वृद्धि न हो, और पूर्वपद को विकल्प करके होवे। जैसे—अर्द्धप्रस्थेन क्रीतमार्द्धप्रस्थिकम्, अर्द्धप्रस्थिकम्; आर्द्धकंसिकः; अर्द्धकंसिकः।

यहां 'अकार' का ग्रहण इसलिये है कि—आर्द्धकौडविकः, यहां वृद्धि का निषेध न होवे। और 'अकार में तपरकरण' इसलिये है कि—अर्द्धखार्यां भवा आर्द्धखारी, यहां खारी शब्द उत्तरपद के आदि में दीर्घ आकार है।

यद्यपि वृद्धि होने न होने में कुछ विशेष नहीं दीखता, तो भी—आर्द्धकारी भार्य्या अस्य आर्द्धकारीभार्य्यः, यहां वृद्धि के निमित्त तद्धित प्रत्यय के परे पुंवद्भाव का निषेध नहीं पावेगा। क्योंकि जिस तद्धित प्रत्यय के परे वृद्धि का निषेध है, वह वृद्धि का निमित्त नहीं हो सकता कि जैसे—वैयाकरणी भार्य्या अस्य वैयाकरणभार्य्यः यहां पुंवद्भाव हो जाता है, वैसे उसमें भी हो जावेगा ॥ ९४५ ॥

प्रवाहणस्य ढे ।। ९४६ ।। —अ० ७ । ३ । २८ ।।

तद्धितसंज्ञक ढ प्रत्यय परे हो, तो प्रवाहण शब्द के उत्तरपद के आदि अच् को वृद्धि हो और पूर्वपद के आदि अच् को विकल्प करके होवे ।

जैसे—प्रवाहणस्यापत्यं प्रावाहणेयः, प्रवाहणेयः । प्रवाहण शब्द का शुभ्रादिगण में पाठ होने से ढक् प्रत्यय हो जाता है ।। ९४६ ।।

तत्प्रत्ययस्य च ।। ९४७ ।। —अ० ७ । ३ । २९ ।।

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हो, तो ढक् प्रत्ययान्त प्रवाहण शब्द में उत्तरपद के आदि अच् को नित्य और पूर्वपद के अच् को विकल्प करके वृद्धि हो ।

जैसे—प्रवाहणेयस्य युवापत्यं प्रावाहणेयिः, प्रवाहणेयिः इत्यादि, अपत्य अर्थ में इञ् प्रत्यय हुआ है । दूसरे प्रत्यय के आश्रय जो वृद्धि है, सो ढक् प्रत्यय को मान के विकल्प से नहीं हो सकती, इसलिये यह सूत्र कहा है ।। ९४७ ।।

नञः शुचीश्वरक्षेत्रज्ञकुशलनिपुणानाम् ।। ९४८ ।।
—अ० ७ । ३ । ३० ।।

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हो, तो नञ् से परे जो शुचि, ईश्वर, क्षेत्रज्ञ, कुशल और निपुण उत्तरपद उसके अचों में आदि अच् को नित्य और पूर्वपद को विकल्प करके वृद्धि हो ।

जैसे—शुचि—अशुचेर्भावः आशौचम्, अशौचम्; ईश्वर—अनीश्वरस्य भावः आनैश्वर्य्यम्, अनैश्वर्य्यम्; क्षेत्रज्ञ—आक्षैत्रज्ञ्यम्,

अक्षैत्रज्ञ्यम्; कुशल—अकुशलस्य भावः आकौशलम्, अकौशलम्; निपुण—आनैपुणम्, अनैपुणम् ॥ ९४८ ॥

यथातथयथापुरयोः पर्यायेण ॥ ९४९ ॥

—अ० ७ । ३ । ३१ ॥

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हो, तो नञ् से परे जो यथातथ और यथापुर उसके अचों में आदि अच् को पर्य्याय से वृद्धि हो। अर्थात् जब पूर्वपद को हो तब उत्तरपद को नहीं, और जब उत्तरपद को हो तब पूर्वपद को नहीं होवे।

जैसे—अयथातथा भावः आयथातथ्यम्, अयाथातथ्यम्; आयथापुर्य्यम्, अयाथापुर्य्यम्। अयथातथा और अयथापुर ये दोनों शब्द ब्राह्मणादि गण में पढ़े हैं, इससे ष्यञ् प्रत्यय होता है ॥ ९४९ ॥

इति श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीव्याख्यातोऽष्टाध्याय्यां स्त्रैणताद्धितोऽयं ग्रन्थः समाप्तः ॥

वसुरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे मार्गशीर्षे सिते दले।
पञ्चमीशनिवारेऽयं ग्रन्थः पूर्त्ति गतः शुभः ॥

संवत् १९३८ मार्गशीर्ष शुक्ल ५ शनिवार के दिन यह स्त्रैणताद्धित ग्रन्थ श्रीयुत दयानन्द सरस्वतीजी ने पूरा किया ॥

॥ समाप्त ॥

❊ ओ३म् ❊

ऋषि कृत

शिक्षा व व्याकरण ग्रन्थ

- ☐ अव्ययार्थ
- ☐ आख्यातिक
- ☐ उणादिकोष
- ☐ कारकीय
- ☐ गणपाठ
- ☐ नामिक
- ☐ निघण्टु
- ☐ पारिभाषिक
- ☐ संधि विषय
- ☐ सामासिक
- ☐ सौवर
- ☐ स्त्रैणताद्धित
- ☐ वर्णोच्चारण शिक्षा
- ☐ संस्कृतवाक्यप्रबोध
- ☐ व्यवहारभानु
- ☐ निरुक्त

अवश्य पढ़ें ☐☐